भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच का मुखपत्र

वर्ष- 3, अंक- 9-12 नवम्बर 2016

राष्ट्रीय कायाकल्प

(हिन्दी-त्रैमासिक)

भारत अभी भी गुलामी की व्यवस्था में ही जी-मर रहा है

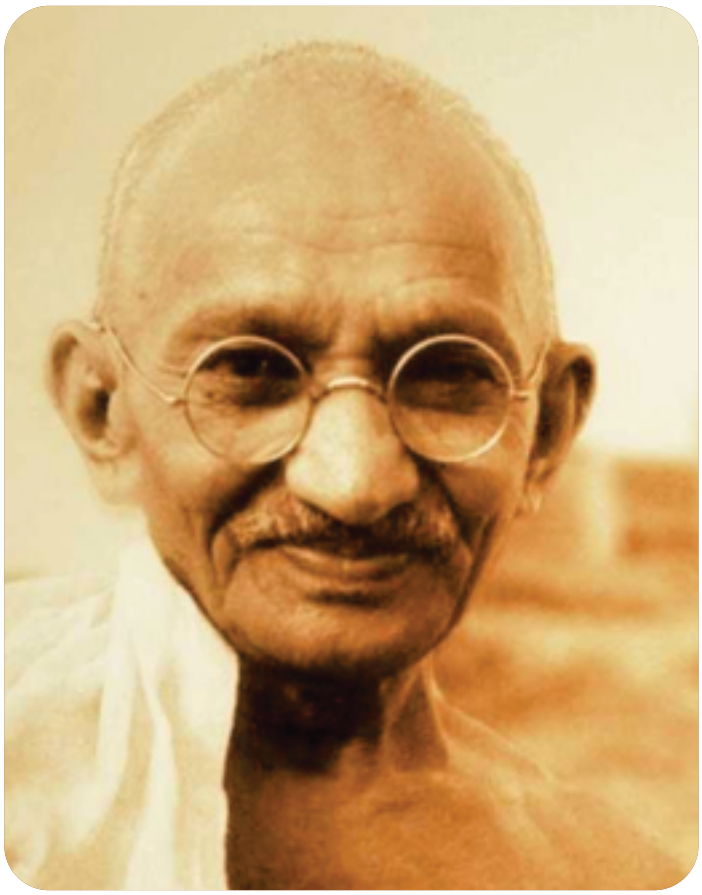

महात्मा गाँधी

1. मेरा यह विश्वास रहा है और इसे मैं ने अनगिनत बार कहा भी है कि भारत इसके कुछ शहरों में नहीं बल्कि इसके सात लाख गाँवों में ही मिलेगा। लेकिन हम शहर वासियों का यह विश्वास रहा है कि भारत इसके शहरों में मिलेगा और गाँव सिर्फ हमारी जरुरतों को पूरा करने के लिए ही बनाये गए हैं। हम शायद ही कभी यह जानने के लिए उत्सुक हुए हों कि उन गरीब गाँव वासियों को भरपेट खाने को मिलता है कि नहीं, उन्हें तन ढँकने के लिए पूरा वस्त्र मिलता है कि नहीं और धूप और बारिश से बचने के लिए उनके ऊपर कोई छत है कि नहीं।

('हरिजन' में 4 अप्रिल 1936 को प्रकाशित अंक से)

2. सच्चे लोकतंत्र का संचालन शीर्ष पर बैठे बीस व्यक्तियों के द्वारा नहीं किया जा सकता। उसके संचालन की शुरूआत हर गाँव के लोगों द्वारा की जानी चाहिए।

('हरिजन' में 18 जनवरी 1948 को प्रकाशित अंक से)

भारतीय शासन व्यवस्था
परिवर्तन विचार मंच का मुखपत्र

राष्ट्रीय कायाकल्प

वर्ष 3, अंक 9-12
नवम्बर 2016

संपादक
डा॰ त्रियुगी प्रसाद

संपादन सहयोगी
राजेश शुक्ल

सहयोग राशि :
प्रति अंक रु. 30.00
व्यक्तिगत वार्षिक रु. 110.00
संस्थागत वार्षिक रु. 150.00

संपर्क :
173 बी, श्रीकृष्णपुरी
पटना 800001
टेलीफोन : 0612-2541276
email: rashtriyakayakalp@gmail.com
www.fcsgi.org

इस अंक में

संपादक की कलम से 2

भारत अभी भी गुलामी की व्यवस्था में जी–मर रहा है 4

लोकतंत्र की अवधारणा और लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की रूपरेखा 12

राष्ट्रीय काया–कल्प (एक चिन्ता : एक चिन्तन) 15

भारत का संसदीय लोकतंत्र – लोकतंत्र से कितना दूर? 18

अब तक बिहार की बाढ़ की समस्या का स्थायी निदान क्यों नहीं? इस शासन व्यवस्था में जनता और विज्ञान की कोई अहमियत नहीं 21

लोकतंत्र में जनता वाकई मालिक है? 25

भारत में पंचायती राज – कैसा राज? 27

मानसिक रूप से आज भी गुलामी का एहसास 30

स्वामित्वाधिकारी, संपादक, प्रकाशक तथा मुद्रक डा. त्रियुगी प्रसाद द्वारा 173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001 से प्रकाशित एवं
वातायन मीडिया एण्ड पब्लिकेशंस प्रा. लि., नीयर बोर्ड ऑफिस, फ्रेजर रोड, पटना, फोन : 0612-2222920 में मुद्रित

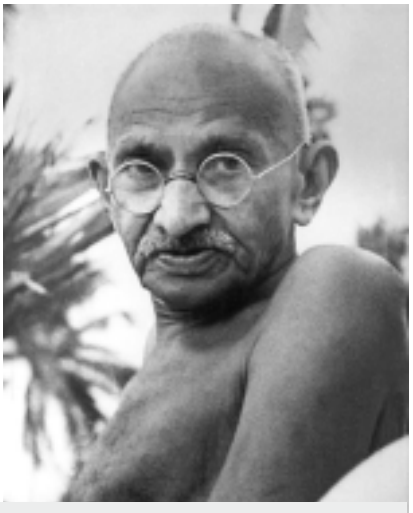

सम्पादक की कलम से...

भारत की स्वतंत्रता की यह विडम्बना है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी के प्रेरणादायी आह्वान पर देश की आम जनता भी जब इस संग्राम का सेनानी बन गयी, और पहले जो एक मध्यम वर्गीय आंदोलन था वह एक जन संग्राम में परिणत हो गया, तो सबका यही सपना था कि उन्हें गुलामी की इस तबाह और बदहाल करने वाली व्यवस्था से मुक्ति मिल जायेगी और भारत में ऐसी व्यवस्था आयेगी जो उसकी सहमति से संचालित होगी।

सर्वप्रथम तो मुझे खेद है कि 'राष्ट्रीय कायाकल्प' का प्रस्तुत अंक बहुत विलम्ब से निकल रहा है। ऐसा मेरे व्यक्तिगत कारणों से हुआ है और मैं इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

'राष्ट्रीय कायाकल्प' का प्रत्येक अंक भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन से सम्बद्ध किसी एक विषय वस्तु को समर्पित होता है जिसका प्रतिपादन विभिन्न लेखों द्वारा किया जाता है। इस अंक का विषय वस्तु है, **''भारत अभी भी गुलामी की व्यवस्था में जी–मर रहा है''।** भारत की स्वतंत्रता और गणतंत्रता के बाद भारत की जनता हर पाँच वर्ष में एक बार भारत की लोकसभा या राज्यों की विधान सभाओं के लिए अपने क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुनने के लिए अपना वोट देती है। इधर कुछ वर्षों से वह हर पाँच वर्ष पर तथाकथित पंचायती राज में पंचायत के मुखिया और अन्य सदस्यों को चुनने के लिए भी वोट देती है। लेकिन इस सबसे न उसके दैनिक जीवन में कोई फर्क पड़ा है और न ही उसकी मूलभूत समस्याओं के निदान में। वह अपने दैनिक जीवन में उसी व्यवस्था से जूझती रहती है जिससे वह गुलाम भारत में भी जूझती थी। वही सरकारी दफ्तर और वही अफसर, वही अफसर की धौंस, वही बेचारी जनता, वही अपनी समस्याओं के निदान के लिए बीडीओ ऑफिस से राज्य की राजधानी और जनता दरबार की दौड़, वही थाना, वही दारोगा, वही कोर्ट–कचहरी, वही वकील, वही भ्रष्टाचार। और देश की बुनियादी समस्या – जनता की गरीबी और बदहाली भी वही है जो आजादी के पहले थी और जिसको दूर करने के लिए ही आजादी की लड़ाई लड़ी गयी थी।

भारत की स्वतंत्रता की यह विडम्बना है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी के प्रेरणादायी आह्वान पर देश की आम जनता भी जब इस संग्राम का सेनानी बन गयी, और पहले जो एक मध्यम वर्गीय आंदोलन था वह एक जन संग्राम में परिणत हो गया, तो सबका यही सपना था कि उन्हें गुलामी की इस तबाह और बदहाल करनी वाली व्यवस्था से मुक्ति मिल जायेगी और भारत में ऐसी व्यवस्था आयेगी जो उसकी सहमति से संचालित होगी। इस संग्राम में विभिन्न अवसरों पर महात्मा गांधी ने कहा था कि स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य अंग्रेजों द्वारा भारत पर थोपी गयी इस शोषणात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था से मुक्ति है, मात्र अंग्रेजों को भारत से भगाना नहीं। 15 अगस्त 1947 को जब भारत को ब्रिटिश संसद द्वारा पारित एक ऐक्ट के माध्यम से राजनीतिक स्वतंत्रता मिली तो उसमें यह प्रावधानित था कि जब तक भारत अपना संविधान नहीं बना लेता भारत में शासन की वही चली आ रही औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ही प्रभावी रहेगी। भारत ने अपने संविधान को 1949 ई० के नवम्बर में अंतिम रुप दिया जो 26 जनवरी 1950 को देश भर में लागू हो गया। लेकिन निवर्तमान ब्रिटिश सरकार की चाल, औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के लाभुक भारत के

कुछ प्रभावकारी वर्गों के निहित स्वार्थ और भारत की तत्कालीन स्थितियों के दुर्योग से हमने अपने संविधान में मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना कर न अपने स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी के प्रति विश्वासघात किया, बल्कि स्वतंत्रता संग्राम के लाखों करोड़ों सेनानियों के सपनों पर पानी फेर दिया और एक तरह से स्वतंत्रता संग्राम को ही नकार दिया। महात्मा गाँधी के नाम की दुहाई देने वाले कब हमारे नेता या कब कोई नेता भारत को औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से मुक्त कर, इसके स्थान पर ग्राम गणतंत्र आधारित शासन व्यवस्था स्थापित कर और इस तरह महात्मा गाँधी के प्रेरणादायी नेतृत्व में संचालित भारत के अनूठे स्वतंत्रता संग्राम को अपने लक्ष्य तक पहुँचा कर इसके महानायक के प्रति किए गए विश्वासघात के अपराध का प्रायश्चित करने के लिए देश को अवसर देगा।

आज 65 वर्षों से ज्यादा भारत को उसी शासन व्यवस्था में रहते हो गए। विश्व में घटित अभूतपूर्व टेक्नोलॉजिकल क्रांति और वैश्वीकृत, उदारीकृत और निजीकृत अर्थव्यवस्था के चलते भारत में भी बहुत से क्षेत्रों में बहुत परिवर्त्तन हुए हैं लेकिन अपने दैनिक जीवन में हम और विशेषतया गाँवों में रहने वाले लोग, आज भी गुलामी की उसी व्यवस्था से जूझ रहे हैं, परेशान हो रहे हैं और देश उससे उत्पन्न कई समस्याओं यथा भ्रष्टाचार, सामाजिक अशांति, अन्तर्विद्रोह, आदि से ग्रस्त रहा है। यह अंक राष्ट्रीय जीवन की इसी स्थिति पर प्रकाश डालता है।

हाल के दिनों में हुई कश्मीर में आतंक की कुछ घटनाओं से आज देश उद्वेलित है। पिछले कुछ महीनों से भारत का यह उत्तरी भाग अशांत और उपद्रव ग्रस्त रहा है। आवश्यकता है कि कश्मीर की इस स्थिति को ठीक से समझने के लिए इसे थोड़ी गहराई और व्यापकता से देखें जिससे इसका प्रभावकारी समाधान हो सके। 1947 में भारत में विलय के पूर्व कश्मीर में रियासती व्यवस्था थी लेकिन विलय के बाद वहाँ भी वही शासन व्यवस्था लागू हो गई जो औपनिवेशिक भारत में थी। यह शोषणकारी और अनैतिकतापरक व्यवस्था है। चूँकि यह व्यवस्था समावेशी नहीं है, इसमें शोषण कई विधियों और माध्यमों से किया जाता है। उनमें से एक है भ्रष्टाचार। समाज में इस शोषणात्मक और अनैतिकतापरक व्यवस्था में कुछ वर्ग लाभान्वित होते हैं और कुछ वर्ग वंचित। वंचित वर्ग व्यवस्था से विद्रोह की भावना के लिए उपजाऊ जमीन है। यदि इसमें आवश्यक खाद पानी मिले तो विद्रोह की यह भावना भड़क उठेगी। खाद–पानी तो बाहर से मिलता है और वह हमारे नियंत्रण से बाहर हो सकता है। लेकिन जमीन तो हम तैयार करते हैं। यदि हमारी शासन व्यवस्था ऐसी हो कि उसमें कोई वर्ग वंचित नहीं हो, तो जमीन ही विद्रोह के लिए उपयुक्त नहीं होगी। कश्मीर के मामले में बाहर से खाद–पानी मिलने की प्रबल संभावना है और हम इसे रोक भी नहीं सकते हैं। लेकिन यह हमारे हाथ में है कि कश्मीर में समावेशी शासन व्यवस्था हो जिसमें कोई वंचित वर्ग नहीं हो, जिससे विद्रोह की कोई स्थिति ही न बने। समावेशी शासन व्यवस्था का अर्थ है लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था और लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का आधार है सशक्त स्थानीय, ग्रामीण या शहरी शासन। कोई भी चेन उतना ही मजबूत होगा जितना उसकी हर कड़ी। सशक्त केन्द्र सरकार, सशक्त राज्य की सरकार और अशक्त स्थानीय सरकार से देश कभी भी सशक्त और अटूट नहीं रह सकता। भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अभियान का उद्देश्य है भारत में, जिसमें कश्मीर भी है, ऐसी ही शासन व्यवस्था स्थापित करना। देश की प्रायः हर समस्या का शासन व्यवस्था परिवर्त्तन ही है प्रभावकारी समाधान।

28 सितम्बर 2016

डॉ त्रियुगी प्रसाद

आज 65 वर्षों से ज्यादा भारत को उसी शासन व्यवस्था में रहते हो गए। विश्व में घटित अभूतपूर्व टेक्नोलॉजिकल क्रांति और वैश्वीकृत, उदारीकृत और निजीकृत अर्थव्यवस्था के चलते भारत में भी बहुत से क्षेत्रों में बहुत परिवर्त्तन हुए हैं लेकिन अपने दैनिक जीवन में हम और विशेषतया गाँवों में रहने वाले लोग, आज भी गुलामी की उसी व्यवस्था से जूझ रहे हैं, परेशान हो रहे हैं और देश उससे उत्पन्न कई समस्याओं यथा भ्रष्टाचार, सामाजिक अशांति, अन्तर्विद्रोह, आदि से ग्रस्त रहा है। यह अंक राष्ट्रीय जीवन की इसी स्थिति पर प्रकाश डालता है। हाल के दिनों में हुई कश्मीर में आतंक की कुछ घटनाओं से आज देश उद्वेलित है। पिछले कुछ महीनों से भारत का यह उत्तरी भाग अशांत और उपद्रव ग्रस्त रहा है। आवश्यकता है कि कश्मीर की इस स्थिति को ठीक से समझने के लिए इसे थोड़ी गहराई और व्यापकता से देखें जिससे इसका प्रभावकारी समाधान हो सके।

भारत अभी भी गुलामी की व्यवस्था में ही जी-मर रहा है

हजारों सालों के भारत के इतिहास में विभिन्न उद्देश्यों के लिए भारत के बाहर से बहुत लोग यहाँ आते रहे हैं – ज्ञान की खोज में, व्यापार के लिए, या एसे पदार्थों की खरीद के लिए जो भारत में ही पैदा होते या बनते थे, जैसे दक्षिणी भाग से मसाले, उत्तर पूर्वी भाग में बने बेहतरीन कपड़े और मध्य भाग से हीरे–जवाहरात। बाहर की दुनिया के साथ भारत का यह अन्तर्सम्बंध भारत की उत्कृष्टता और समृद्धि में वृद्धि ही करता रहा।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

हजारों सालों के भारत के इतिहास में विभिन्न उद्देश्यों के लिए भारत के बाहर से बहुत लोग यहाँ आते रहे हैं – ज्ञान की खोज में, व्यापार के लिए, या एसे पदार्थों की खरीद के लिए जो भारत में ही पैदा होते या बनते थे, जैसे दक्षिणी भाग से मसाले, उत्तर पूर्वी भाग में बने बेहतरीन कपड़े और मध्य भाग से हीरे–जवाहरात। बाहर की दुनिया के साथ भारत का यह अन्तर्सम्बंध भारत की उत्कृष्टता और समृद्धि में वृद्धि ही करता रहा। यूरोप में हुई औद्योगिक क्रांति के बाद और उसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार से मान्यता प्राप्त ब्रिटेन के उद्योगपतियों और व्यापारियों का एक प्रतिष्ठान 'इस्ट इंडिया कम्पनी' के कुछ अधिकारी सत्रहवीं सदी के आरम्भ में भारत आए। उनका उद्देश्य था ब्रिटेन के नवस्थापित उद्योगों के लिए कच्चा माल भारत से लेना और उनके उत्पादित वस्तुओं को भारत में बेचना। कृषि के लिए आवश्यक प्राकृतिक और मानव संसाधनों से सम्पन्न भारत और उसका विशाल बाजार भारत के प्रति उनके आकर्षण का प्रमुख कारण था। इससे ब्रिटेन के नवस्थापित उद्योग सम्पोषित और संवर्द्धित होंगे, उन उद्योगों के शेयरधारक लाभान्वित होंगे और इस तरह ब्रिटेन समृद्ध होगा। और यह लाभपूर्वक होगा भारत और उसकी जनता के शोषण की कीमत पर। यह सम्पूर्ण भारत में निर्बाध ढंग से किया जा सके, इसके लिए 'इस्ट इंडिया कम्पनी' के भारत में आए अधिकारियों ने तत्कालीन मुगल साम्राज्य के सम्राट जहाँगीर से बाजाप्ता अनुमति भी ली थी। यह अनुमति प्राप्त करने के लिए लिए उन्होंने सम्राट को कई प्रलोभनों से खुश कर दिया था। अपने व्यापारिक हितों की रक्षा और उन्हें विस्तारित करने के उद्देश्य से इस कंपनी ने अपनी एक सेना भी रख ली थी, जिसका प्रयोग वे न केवल यूरोप के कुछ अन्य देशों द्वारा भारत में स्थापित प्रतिस्पर्धी व्यापारिक इकाइयों से लोहा लेने में करते थे, बल्कि मुगल साम्राज्य के अधीन लेकिन प्रायः स्वतंत्र नवाबों और राजाओं को भी अपनी शर्तों के मनवाने के लिए करने में नहीं हिचकते थे।

अठाहरवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य में अनेक नवाबों, राजाओं और अन्य शासकीय इकाइयों का उदय हुआ जिनमें एकता के अभाव और पारस्परिक प्रतिद्वंदिता का लाभ लेकर और अपनी आधुनिक सैन्य शक्ति के बल पर 'इस्ट इंडिया कम्पनी' ने 1757 ई० में प्लासी के युद्ध में विजय के फलस्वरूप भारत में

अपना राज ही स्थापित कर लिया। इस तरह पाँच हजार वर्षो से अधिक के भारत के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ कि यहाँ जो राज स्थापित हुआ उसका उद्देश्य था लम्बी अवधि तक इस देश का शोषण करते रहना या लूटते रहना जिसके लाभुक सात समुंदर पर बसे एक देश के व्यापारियों का एक समूह, वहाँ की सरकार और वहाँ के लोग थे। इस लाभ को अधिकाधिक करने के लिए 'इस्ट इंडिया कम्पनी' अपनी सैन्य शक्ति के बल और दम पर यहाँ के किसानों, राजाओं और अन्य वर्गों से किसी न किसी नाम पर खुल्लम–खुल्ला लूट–खसोट करने लगी। इससे लोगों में असंतोष और राजाओं में विद्रोह की भावना पनपने लगी। 1857 ई० में 'इस्ट इंडिया कम्पनी' के खिलाफ प्रायः देशव्यापी विद्रोह भड़क गया।

हालाँकि देश के राजाओं और नवाबों में एकता की कमी, आपसी वैमनस्य, षडयंत्र और अपनी आधुनिक सैन्य शक्ति के बल पर 'इस्ट इंडिया कम्पनी' इस विद्रोह को विफल करने में सफल हो गई, लकिन ब्रिटेन में यह संदेश गया कि भारत में 'इस्ट इंडिया कम्पनी' की खुल्लम–खुल्ला शोषण और लूट–खसोट की व्यवस्था बहुत दिन नहीं चल सकती। यह ब्रिटेन के लिए चिंता का विषय था। वह भारत जैसी सोने की चिड़िया से वंचित नहीं होना चाहती थी। विशेषकर ब्रिटिश सरकार, जिसकी अनुमति से 'इस्ट इंडिया कम्पनी' भारत में आई थी, विशेष रूप से चिंतित थी क्योंकि बहुत वर्षो पहले से ही 'इस्ट इंडिया कम्पनी' द्वारा भारत में खुल्लम–खुल्ला लूट–खसोट के कुकृत्यों तथा उनसे जनित भारत के लोगों में बढ़ते असंतोष और विद्रोह की भावना के समाचार आ रहे थे। एक ओर तो वह भारत के शोषण और लूट के लाभ से ब्रिटेन को वंचित नहीं करना चाह रही थी, दूसरी ओर 'इस्ट इंडिया कम्पनी' के कारनामों के फलस्वरूप भारत में उभरते असंतोष और विद्रोह की भावना के चलते इस व्यवस्था के अंत होने की संभावना प्रबल हो रही थी। इसी के सन्दर्भ में ब्रिटिश सरकार ने अपने एक लब्धप्रतिष्ठ सांसद लॉर्ड मेकॉले को 1833 ई० में भारत भेजा था कि भारत की वस्तुस्थिति देख–समझकर वे यह रिपोर्ट दें कि कैसे और किस विधि से सात समुंदर पार बसे एक छोटा सा देश ब्रिटेन भारत जैसे विशाल और अपेक्षाकृत समृद्ध देश पर इसके शोषण के उद्देश्य से दीर्घ काल तक राज कर सकता है।

1835 ई० में 'ब्रिटिश हाउस ऑफ लॉर्ड्स' में दिए गए अपनी रिपोर्ट में लॉर्ड मेकॉले ने लिखा है कि समस्त भारत के अपने दौरे में उन्होंने एक भी भीखमंगा नहीं देखा और उन्होंने पाया कि भारत के घरों में लोग ताला नहीं लगाते। अनुशंसा के तौर पर उन्होंने लिखा कि ऐसी स्थिति में जब तक भारत के लोगों का नैतिक पतन संस्थागत रूप से सुनिश्चित नहीं किया जायेगा, भारत जैसे समृद्धि और नैतिकता सम्पन्न देश पर शोषण के उद्देश्य से दीर्घ काल तक राज नहीं किया जा सकता। अतः भारत की शिक्षा और शासन व्यवस्था इस तरह से अभिकल्पित करनी पड़ेगी जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके। 'इस्ट इंडिया कम्पनी' के विरुद्ध 1857 ई० के भारतीय विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने देखा कि अब पानी सर के ऊपर चढ़ गया है और फलतः 1858 ई० में 'इस्ट इंडिया कम्पनी' को हटा कर भारत में ब्रिटिश राज स्थापित कर दिया जो ब्रिटिश सरकार के अधीन संचालित होगा। इस तरह विशाल भारत सात समुंदर पर बसे एक छोटे से देश ब्रिटेन का विधिवत गुलाम बन गया। इसके साथ ही लॉर्ड मेकॉले की अनुशंसा को ध्यान में रखते हुए 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1858' के माध्यम से अभिकल्पित शासन व्यवस्था भारत पर थोप दी गयी। उभरती परिस्थितियों के मद्देनजर यह ऐक्ट मूल तत्त्व को बरकरार रखते हुए चार बार संशोधित हुआ (1912 ई०, 1915 ई०, 1919 ई० और 1935 ई०)। ब्रिटिश भारत में 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1935' में निरूपित शासन व्यवस्था 1936 ई० से लकर आजादी तक (15 अगस्त 1947) भारत में कायम रही। महात्मा गाँधी के प्रेरणादायी नेतृत्व में संचालित भारत के स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य था भारत को इसी शासन व्यवस्था से मुक्त करना। उनकी अनुपम दृष्टि में भारत को अंग्रेजों ने नहीं, उनके द्वारा भारत पर थोपी गई इस शासन व्यवस्था ने इसकी दुर्दशा कर दी है।

ब्रिटिश पार्लियामेंट में पारित 'इंडियन इंडिपेंडेंस ऐक्ट 1947' के माध्यम से भारत को आजादी मिली। इस एक्ट में यह प्रावधान था कि जब तक भारत अपना संविधान नहीं बना लेता, भारत का शासन 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1935' के प्रावधानों के अनुरूप ही होता रहेगा। इस तरह 15 अगस्त 1947 को भारत में सिर्फ ब्रिटिश सत्ता का भारतीयों के हाथ में हस्तांतरण हुआ, सत्ता का स्वरूप नहीं बदला, आकांक्षित आजादी नहीं आई।

संविधान निर्माण

जिस आजाद भारत के लिए आजादी की लड़ाई लड़ी गई थी, उसके अनुरूप सत्ता का स्वरूप समुचित संविधान बनाकर ही लाया जा सकता था और उसके लिए हम 15 अगस्त 1947 को सक्षम हो गए थे। पूरे देश की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के अनुरूप भारत का समुचित संविधान बनाने के

लिए यह आवश्यक था कि संविधान सभा में पूरे देश का समुचित प्रतिनिधित्व हो। स्वतंत्रता आंदोलन में कई अवसरों पर इस आंदोलन का अग्रणी राजनीतिक दल कांग्रेस ने स्पष्ट कहा था कि स्वतंत्र भारत की संविधान सभा का गठन सार्वभौमिक बालिग मताधिकार के आधार पर होगा, जिससे इस सभा में भारत के सब वर्गों का – अमीर, गरीब, किसान, मजदूर, शिक्षित, अशिक्षित, सब सम्प्रदायों, जातियेां और अन्य सामाजिक वर्गों, इत्यादि का समुचित प्रतिनिधित्व हो। लेकिन दुर्भाग्यवश निवर्तमान ब्रिटिश शासकों के निहित स्वार्थ और स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय राजनीतिक दलों के नेताओं की अदूरदर्शिता के फलस्वरूप ऐसा नहीं हो सका। ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रारूपित ''कैबिनेट मिशन प्लान'' के प्रावधानों के तहत स्वतंत्र भारत के लिए संविधान बनाने के लिए संविधान सभा का गठन 1946 ई० में गुलाम भारत में ही कर दिया गया था। इस तरह गठित संविधान सभा में भारत की जनता का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व नहीं था। इस संविधान सभा में ऐसे सदस्यों की बहुतायत थी जो ब्रिटिश भारत में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के लाभुक थे और स्वतंत्र भारत में भी ऐसी शासन व्यवस्था कायम रखने में ही अपना निहित स्वार्थ समझते थे। महात्मा गांधी के शीर्ष अनुयायी भी, जो इस संविधान सभा के सदस्य बने और संविधान निर्माण में भी जिनकी अग्रणी भूमिका थी, स्वतंत्र भारत के लिए उपयुक्त शासन व्यवस्था के सम्बंध में गाँधी जी की अनुपम दृष्टि के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध नहीं थे। महात्मा गांधी के प्रेरणादायी नेतृत्व में संचालित स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इस दृष्टि में वे कुछ आस्था रखते भी थे ओर कई अवसरों पर उन्होंने इसका इजहार भी किया था। लेकिन जैसे–जैसे भारत की स्वतंत्रता नजदीक आती दिखने लगी और खासकर औपनिवेशिक भारत में 1946 ई० में गठित भारत की अंतरिम सरकार में जब वे विधिवत शामिल हो गए और औपनिवेशिक शासन व्यवस्था का स्वाद चखने लगे, उनकी आधी–अधूरी प्रतिबद्धता भी समाप्तप्राय होने लगी। उन्हें यह छद्म विश्वास या भ्रम होने लगा कि उनके नेतृत्व में संचालित औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के माध्यम से भी स्वतंत्रता संग्राम में पाले गए भारत के सपनों को वे साकार कर पाएंगे। अतः संविधान निर्माण की प्रक्रिया में गांधी जी संदर्भहीन कर दिए गए। भारत के विभाजन और उससे उत्पन्न हिंसा के तांडव से महात्मा गाँधी ऐसे भी टूट चुके थे। स्वतंत्र भारत के लिए संविधान के निर्माण को वे सदा सर्वोच्च महत्त्व देते थे और भारत में वास्तविक आजादी लाने में इसकी अहम भूमिका मानते थे, फिर भी भारत के संविधान निर्माण में उपेक्षित और संदर्भहीन किए जाने का वे कोई प्रतिवाद नहीं कर सके। संविधान की प्रस्तावना में भारत की जनता के नाम पर स्वतंत्र भारत के लिए जिन आकांक्षाओं और उद्देश्यों को प्रतिपादित किया गया, उन्हें जमीन पर उतारने के लिए मूलतः वही औपनिवेशिक शासन तंत्र अपना लिया गया जिसके माध्यम से भारत का अब तक शोषण किया जाता रहा था। इस तरह संविधान निर्माण में न सिर्फ महात्मा गाँधी और स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों के प्रति विश्वासघात हुआ बल्कि अहिंसा आधारित भारत के विलक्षण स्वतंत्रता संग्राम को ही नकार दिया गया। **भारत की स्वतंत्रता लंदन से चलकर 'इंडिपेंडेंस ऑफ इंडिया ऐक्ट 1947' के माध्यम से 15 अगस्त 1947 ई० को दिल्ली पहुँची और फिर 26 जनवरी 1950 ई० को भारतीय संविधान के माध्यम से राज्यों की राजधानियों तक पहुँची लेकिन भारत की सरजमीं पर नहीं उतरी, भारत के लाखों गाँवों और हजारों शहरों में रहने वाले करोड़ों लोगों तक नहीं पहुँची।** गाँवों या शहरों में बसने वाली आम जनता यदि खराब विधि व्यवस्था से त्रस्त है या उसके बच्चों को समुचित स्कूली शिक्षा नहीं मिल पा रही है तो वह आज भी लगभग उतना ही लाचार या निस्सहाय है जितना वह आजादी के पहले था। स्पष्टतः, कारण है कि शासन की व्यवस्था तो वही है जो पहले थी, शासन तंत्र तो वही है। इस व्यवस्था में देश या राज्यों की विधायिकाओं के लिए चुनावों में वोट की शक्ति मिलने से उसकी स्थिति में कोई बुनियादी फर्क नहीं आया है, वह सिर्फ वोट बैंक बन कर रह गयी है जिसके खाते का संचालन सत्तालोलुप शक्तियां नाना विधियों या तिकड़मों के सहारे करती हैं। आजादी के 45 वर्षों के बाद संभवतः महात्मा गाँधी की आत्मा को तुष्ट करने के लिए संविधान में संशोधन कर देश में पंचायती राज की स्थापना की गयी। लेकिन उस तथाकथित राज की व्यवस्था उसी लूटतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत की गयी, जिसके फलस्वरूप देश में एक और लूट का केन्द्र स्थापित हो गया– देश, राज्य और फिर गाँव या शहर। पंचायती राज संसाधनों और प्रशासनिक शक्तियों के लिए राज्य सरकार पर आश्रित है, स्वतंत्र रूप से इसका अपना कोई वजूद नहीं है।

वर्त्तमान शासन व्यवस्था में भारत का स्वरूप

इस तरह स्वतंत्र भारत में शासन व्यवस्था मूल रूप से वही रही जो औपनिवेशिक भारत में थी। यह व्यवस्था 'गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट 1935' में प्रावधानित था और मूलतः यही व्यवस्था संविधान के माध्यम से गणतंत्र भारत में भी अपना ली गई। इस संविधान के

तहत पिछले पैंसठ वर्षों से ज्यादा के अन्तराल में देश की विभिन्न समस्याओं के निराकरण के लिए, विभिन्न विकृतियों के उन्मूलन के लिए और विभिन्न स्थितियों से निबटने के लिए बहुत से कानून बनाए गए। इन कानूनों को बनाने में यदि कोई संवैधानिक अड़चनें आईं तो संविधान को संशोधित कर दिया गया। इन पैंसठ सालों में हमारे संविधान में अब तक 100 संशोधन हो चुके हैं। तुलना के दृष्टिकोण से देखें तो संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के 225 वर्षों में अब तक सिर्फ 27 संशोधन ही किए जा सके हैं। यदि हमारे संविधान में हुए इन संशोधनों और बने अन्य कानूनों की समीक्षा की जाए कि वे अपने उद्देश्यों को हासिल करने में कितने कारगर हुए हैं तो हमें घोर निराशा होगी। ये संविधानिक संशोधन और ये कानून अपने उद्देश्यों को हासिल करने में ज्यादातर या मूल रूप से असफल ही रहे हैं – चाहे वह दहेज प्रथा का उन्मूलन हो, भ्रष्टाचार का निवारण हो, दलित प्रताड़ना का निरोध हो, शिक्षा का अधिकार हो या बहुत से अन्य। बहुत सी समस्यायें तो सम्बंधित कानून के बावजूद विकराल से विकरालतर होती गयी हैं, जैसे भ्रष्टाचार की समस्या। इस चिरकालिक असफलता का यदि तात्त्विक विश्लेषण किया जाय तो हम पाएंगे कि इसकी जड़ में हमारी शासन व्यवस्था है। कई समस्याओं को तो जन्म ही देती है और पोषित करती है यह शासन व्यवस्था, जैसे भ्रष्टाचार की समस्या। भ्रष्टाचार इस शासन व्यवस्था की अवधारणा में ही है। जो शासन व्यवस्था शासित के शोषण या व्यवस्थित लूट के लिए बनाई गई हो, उसमें तो उस व्यवस्था में सहयोगियों और सहायकों को उनके सहयोग और सहायता के लिए भ्रष्टाचार की सुविधा या संभावना प्रदान करना तो एक तरह से प्रलोभन या पुरस्कार है। औपनिवेशिक शासन काल में भ्रष्टाचार कोई अपराध नहीं था और इसके निरोध के लिए कोई विशेष कानून नहीं था। स्वतंत्र भारत में भ्रष्टाचार को अपराध की श्रेणी में लाया गया और उसके लिए कड़े से कड़े कानून बने। लेकिन शासन व्यवस्था वही रही जिसकी अवधारणा में ही भ्रष्टाचार था। फलतः कानून बनते गए और भ्रष्टाचर बढ़ता रहा। अगर बीमारी की पहचान नहीं हो तो 'ज्यों–ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता ही गया'। प्रकारांतर से यही स्थिति देश की अन्य समस्याओं और विकृतियों के लिए बने संविधानिक संशोधनों और कानूनों की है। पंचायती राज कानून का एक और उदाहरण लीजिए। इस कानून से ग्रामीण व्यवस्था कितनी सशक्त हुई है और शासन में जनता की प्रभावी भागीदारी कितनी बढ़ी है यह तो यक्ष प्रश्न है लेकिन इतना तो सर्वमान्य है कि पंचायती राज कानून से सरकार में लूट का दायरा बढ़ा है और गाँवों में राजनीतिक और सामाजिक विद्वेष बढ़ा है। ऐसा क्यों? क्यांकि पंचायती राज की व्यवस्था भी तो उसी शासन व्यवस्था का हिस्सा है।

स्वतंत्र और गणतंत्र भारत के लगभग 70 वर्षों के अनुभव के आलोक में हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि हम अपनी किसी भी समस्या का समाधान और किसी भी विकृति का उन्मूलन या निराकरण नहीं कर पाए हैं। इनके लिए जो कानून बने या संवैधानिक संशोधन किए गये, वे प्रभावी नहीं हुए। बल्कि उल्टे ये समस्याएं और विकृतियां समय के साथ बढ़ती ही गई हैं। बहुत से मामलों में तो उन कानूनों का दुरूपयोग भी हुआ है और हो रहा है। प्रश्न है कि ऐसा क्यों हो रहा है। इसका यदि ऐतिहासिक और तात्त्विक विश्लेषण किया जाय तो कारण सूर्य की रोशनी की तरह स्पष्ट होगा कि ऐसा इसलिए कि हमारी शासन व्यवस्था निहायत दोषपूर्ण है। क्या हैं इस व्यवस्था के दोष – आइए जरा हम इस पर कुछ गौर करें।

वर्त्तमान शासन व्यवस्था के दोष

(i) शोषणात्मक व्यवस्था

पहली बात तो यह है कि इस शासन व्यवस्था की मूल भावना और अभिकल्पना ही दूषित है। यह शासन व्यवस्था अभिकल्पित की गई थी शासित देश और उसकी जनता का शोषण करने के लिए या यों कहें कि उसे दीर्घकाल तक व्यवस्थित रूप से लूटने के लिए। यह शासन व्यवस्था लूटतंत्र का व्यवस्थात्मक स्वरूप है। ब्रिटिश शासन काल में इस लूट तंत्र के प्रधान लाभुक तो थे इस तंत्र को संचालित करने वाले ब्रिटिश पदाधिकारी, ब्रिटिश सरकार और प्रकारांतर से ब्रिटेन की जनता। गौण रूप से वे भारतीय भी इस तंत्र के लाभुक थे जो इस तंत्र के संचालन में सहायक या सहयोगी थे, यथा भारतीय सरकारी पदाधिकारी और सहायक तथा वे जिन्हें इस तंत्र की छत्रछाया में स्वयं शोषण करने की छूट थी, यथा राजा, महाराजा और जमींदार। उसी शासन व्यवस्था या लूट तंत्र के तहत स्वतंत्र भारत में इसके प्रधान लाभुक हैं जो इस तंत्र के संचालन में निर्णायक भूमिका निभाते हैं यथा जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि, मंत्रिगण और उच्च पदाधिकारीगण। गौण रूप से वे सभी लोग लाभुक हैं जो इस तंत्र के संचालन में सहयोगी या सहायक की भूमिका निभाते हैं। इसके अलावा वे लोग भी इस तंत्र के लाभुक हैं जो किसी न किसी रूप से इस तंत्र की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने में सक्षम हैं यथा बड़े व्यापारी, उद्योगपति या अन्य।

इस शासन व्यवस्था में कैसे होता है जनता का शोषण? इसे ठीक से समझना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि भारत की

शासन व्यवस्था दुनिया की सबसे खर्चीली शासन व्यवस्था है। इस खर्चीली शासन व्यवस्था का भार उस देश की जनता वहन करती है जो दुनिया के निर्धनतम देशों में एक है।

इस शासन व्यवस्था के खर्च का एक भाग तो है इसके पदाधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ता, और अन्य अनुलाभ का खर्च। आम जनता, जो इस खर्च का भार वहन करती है, उसकी आय से इसका न कोई सम्बंध है और न रखने का कोई प्रयास है। प्रतीक के तौर पर देखें तो भारत का शासनाध्यक्ष, हमारे राष्ट्रपति जिस भवन में रहते हैं वह विश्व के देशों के शासनाध्यक्षों के भवनों में सबसे ज्यादा भव्य है। भारत का राष्ट्रपति भवन अमेरिका के राष्ट्रपति भवन ''व्हाइट हाउस'' से कई गुना ज्यादा आलीशान है। भारतीय शासन व्यवस्था के खर्चीलेपन का यह प्रतीक पूरी शासन व्यवस्था में व्याप्त है।

हमारी शासन व्यवस्था के खर्चीले होने का एक और मौलिक कारण है। चूँकि यह शासन व्यवस्था 'लूट तंत्र' का पर्याय है. इसमें भागीदारी के लिए आपा धापी मची रहती है और उसे नियंत्रित करने में विधि व्यवस्था का प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। उदाहरण के लिए भारत में एक देशव्यापी चुनाव कराने में जितना सरकारी खर्च होता है वह अमेरिका जैसे लोकतांत्रिक देश में होने वाले खर्च से अनुमानतः सौ गुना से भी अधिक होता है। यदि भारत में होने वाले इस चुनावी खर्च में प्रत्याशियों और उनकी पार्टियों द्वारा किए जाने वाले खर्च को और विकास पर होने वाले प्रतिकूल प्रभावों को शामिल किया जाये तो यह खर्च और भी बढ़ जाता है।

इस शासन व्यवस्था या लूटतंत्र में जनता का शोषण एक और माध्यम से होता है, वह है भ्रष्टाचार के माध्यम से। भ्रष्टाचार इस शासन व्यवस्था का एक अभिन्न और अनिवार्य अंग है। यह इस व्यवस्था की अभिकल्पना में है। ब्रिटिश शासन काल में भ्रष्टाचार इस व्यवस्था का सर्वमान्य अंग था और कोई आपराधिक कृत्य नहीं था और न ही कोई भ्रष्टाचार निरोधक कानून था। यह स्वाभाविक भी है। जिस व्यवस्था का उद्देश्य शासित का शोषण हो उसमें भ्रष्टाचार अनिवार्य रूप से इसमें स्वतः व्याप्त है। हाँ, कई कारणों से स्वतंत्र भारत में एक अंतर अवश्य हुआ है। अब भ्रष्टाचर अपराध की श्रेणी में आ गया है। फलतः, स्वतंत्र भारत में भ्रष्टाचार के निवारण के लिए कई कानून बने और कई एजेंसियां बनायी गयीं। लेकिन भ्रष्टाचार रूका नहीं, बढ़ता हो गया – व्यापकता और मात्रा दोनों में। यह इस व्यवस्था का अनिवार्य अंग जो है।

इस खर्चीली शासन व्यवस्था के पूरे खर्च और इसमें अनिवार्य रूप से व्याप्त बढ़ते भ्रष्टाचार का बोझ भारत की आम जनता और विशेषतया इसके विशाल निम्न वर्ग पर पड़ता है। निम्न वर्ग से ऊपर के वर्ग तो इस शोषणात्मक व्यवस्था के कुछ अंश में लाभुक भी हैं और पीड़ित भी। लेकिन विशाल निम्न वर्ग तो विशुद्ध रूप से इस व्यवस्था में शोषित और पीड़ित है।

(ii) अनैतिकतापरक व्यवस्था

इस शासन व्यवस्था के मूल में ही अनैतिकता है, यह व्यवस्था अभिकल्पित ही की गयी थी एक अनैतिक काम के लिए – शासित देश को दीर्घकाल तक व्यवस्थित रूप से लूटने के लिए, जिसके लिए यहाँ के लोगों का सहयोग आवश्यक था। इसके लिए संस्थागत रूप से यहाँ के निवासियों में अनैतिकता लाना और सम्पोषित करना आवश्यक था। उदाहरण के लिए ब्रिटिश शासन काल में भ्रष्टाचार शासन व्यवस्था का अनिवार्य अंग था और कोई अपराध नहीं था। कर की चोरी, व्यापार में दो प्रकार की लेखा–पुस्तिका रखना, देश में काला धन का प्रसार जो न सिर्फ हमारी आर्थिक व्यवस्था को असंतुलित करता है बल्कि हमारे सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों को भी दूषित करता है, इत्यादि अनैतिकताए इस शासन व्यवस्था में स्वाभाविक और आम बात है। **यही नहीं, देश में जितने भी अनैतिक कार्य कलाप है उसकी जड़ में यह शासन व्यवस्था है – वे या तो इस व्यवस्था की वजह से पैदा होता है, या इस व्यवस्था से संरक्षण पाता है, या यह व्यवस्था उस का प्रतीकार करने या उससे प्रभावी रूप से निपटने के अपने दायित्व का निर्वाह करने में अक्षम रहती है। इस देश में नैतिकता की हमारी विरासत का वहीं दर्शन होगा जहाँ और जो इस शासन व्यवस्था से अछूता हो।**

(iii) गरीबी पैदा करने वाली व्यवस्था

चूँकि यह शासन व्यवस्था शासित के शोषण पर आधारित है, यह अनिवार्य रूप से गरीबी पैदा करती है। इस व्यवस्था में जहाँ समाज का उच्च वर्ग विशुद्ध रूप से शोषण का लाभुक है और इसका उच्च मध्यम वर्ग शोषण का लाभुक और कुप्रभावित दोनों है, इस का विशाल निम्न मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग विशुद्ध रूप से शोषण से पीड़ित है। यही विशाल वर्ग इस व्यवस्था में गरीबी का दंश झेल रहा है। एक ओर, इस व्यवस्था में तुलनात्मक दृष्टि से देश का सकल धन नहीं बढ़ता। दूसरी ओर, शोषणात्मक व्यवस्था के चलते देश के उपलब्ध धन का विभिन्न वर्गों में बँटवारा भी विषम ढंग से होता है। देश में नयी अर्थव्यवस्था में यह विषमता और बढ़ जाती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध आँकड़ों के जरिए भारत की गरीबी को समझा जा सकता हैं। हजारों वर्षों तक भारत विश्व का सबसे धनी देश रहा है।

बाद में चीन के बाद भारत दूसरे स्थान पर रहा। **मुगल साम्राज्य के अंतिम प्रभावी सम्राट औरंगजेब के समय भारत विश्व की छठी बड़ी अर्थव्यवस्था थी और वैश्विक धन का 23% धन इसके पास था। औपनिवेशिक शासन के अंत में यह विश्व की 46वीं अर्थव्यवस्था हो गयी और इसके पास वैश्विक धन का मात्र 3% धन रह गया। स्वतंत्र भारत में भारत के दारिद्रीकरण की प्रक्रिया और रफ्तार कायम रही। 2014 में भारत विश्व की 130वीं अर्थव्यवस्था हो गयी और इसके पास वैश्विक धन का मात्र 1.3% धन रह गया।**

स्वतंत्र भारत में सिर्फ एक बार चुनावी राजनीति में 'गरीबी हटाओं' के नारे का इस्तेमाल किया गया, और इसका राजनीतिक लाभ भी मिला। बाद के वर्षों में इस नारे का खोखलापन स्पष्ट हो गया। गरीबी हटी नहीं, बढ़ती ही गयी। इस तथ्य को स्वीकारते हुए, भारत के विशाल गरीब वर्ग के वोट बैंक का राजनीतिक लाभ लेने के लिए बहुत से लोक लुभावन योजनाएं शुरू की जाने लगीं, यथा इन्दिरा आवास, ग्रामीण रोजगार योजना, खाद्य सुरक्षा, शिक्षा का अधिकार, इत्यादि। इन योजनाओं का कितना लाभ गरीबों को मिला, यह एक अलग प्रश्न है, लेकिन देश से गरीबी हटाने की बात अब नहीं की जाती। इस शासन व्यवस्था में यह संभव भी नहीं है।

(iv) समाज को बाँटने वाली व्यवस्था

इस शासन व्यवस्था में सत्ता का स्वरूप लूटतंत्रात्मक है, सेवात्मक नहीं। इस व्यवस्था में राजनीति सत्ता केन्द्रित है, किसी विचारधारा को प्रतिपादित और स्थापित करना राजनीति का लक्ष्य नहीं हो कर एक मात्र लक्ष्य सत्ता हासिल करना या उसे कायम रखना है। इसके लिए 'बाँटो और राज करो' की रणनीति ब्रिटिश शासन काल से ही राजनीति का मूलमंत्र रहा है। देश का विभाजन इसी राजनीति का प्रतिफल है। चूँकि शासन व्यवस्था मूलतः वही है, स्वतंत्र भारत में भी राजनीति की यही रणनीति है। अब सिर्फ धर्म के आधार पर ही नहीं, जातियों, उपजातियों और क्षेत्रों को आधार बनाकर भारतीय समाज को बाँटा जा रहा है। इस शासन व्यवस्था में सामाजिक समरसता कभी नहीं आ सकती।

(v) सामाजिक अशांति और अंत-र्विद्रोह पैदा करने वाली व्यवस्था

चूँकि यह शासन व्यवस्था लूटतंत्रात्मक है, लूट में भागीदारी के लिए समाज में होड़ मची रहती है। धरना, प्रदर्शन, बंद, हड़ताल, भूख हड़ताल, रेल रोको, चक्का जाम, इत्यादि इसी होड़ को अभिव्यक्त करते हैं। सार्वजनिक जीवन को अस्त व्यस्त करने वाली ये घटनाएं इस व्यवस्था में आम अनुभव हैं। इस व्यवस्था में सरकार में जनता की कोई प्रभावी भागीदारी नहीं है। फलतः समाज का वंचित वर्ग या तो वंचितता की अपनी पीड़ा भोगने के लिए अभिशप्त रहता है या बगावत पर उतर आता है। नक्सली या माओवादी आंदोलन या विद्रोह इसी का द्योतक है। इस व्यवस्था में अंतर्विद्रोह को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता है। औपनिवेशिक काल में भी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन तो इस शासन व्यवस्था से ही उत्पन्न हुआ।

इस शासन व्यवस्था में लोकतंत्र की भ्रामकता

हमारे संविधान में भारत को एक लोकतांत्रिक देश की आकांक्षा एवं अपेक्षा की गयी है। लेकिन औपनिवेशिक शासन व्यवस्था अपनाने के फलस्वरूप देश में वास्तविक लोकतंत्र न लाकर संसदीय लोकतंत्र के नाम पर भ्रामक लोकतंत्र लाया गया है। वास्तविक लोकतंत्र दो बातों पर निर्भर करता है। पहला, सरकार बनाने में जनता की कितनी प्रभावी भूमिका है और दूसरा कि उसके दैनिक जीवन की आम समस्याओं के प्रबंधन और निराकरण में उसकी कितनी प्रत्यक्ष भागीदारी है। इन दोनों कसौटियों पर भारत का लोकतंत्र एकदम खरा नहीं उतरता है। देश में दो ही स्तरों पर सरकार है, एक केन्द्रीय स्तर पर और दूसरा राज्य स्तरों पर। इन दोनों स्तरों पर सरकारों के लिए जनता सिर्फ उन सरकारों की विधायिकाओं के लिए अपने निर्धारित क्षेत्र से अपना प्रतिनिधि चुनती है। इसके लिए सिर्फ उसको अपना वोट देने का अधिकार है। इसके अलावा सरकार के गठन में उसकी कोई भूमिका नहीं है। इसमें सिर्फ राजनीतिक दलों की ही भूमिका है। चुनाव में कौन प्रत्याशी होंगे, निर्वाचित प्रतिनिधि कैसे सरकार बनाएंगे, कौन सरकार का मुखिया होगा, कौन–कौन अन्य मंत्री होंगे और किस विभाग के, इन सब बातों में जनता मूक दर्शक है। इन बातों में राजनीतिक दलों, जिनकी न कोई संवैधानिक मान्यता है या न कोई बाध्यता है, की दमदार भूमिका है। इनके गठन और क्रिया कलाप में खुद लोकतंत्र है कि नहीं, इनका संचालन कैसे होता है, इन बातों में न जनता की कोई भूमिका है और न किसी संवैधानिक इकाई का। **जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि पर भी कम से कम पाँच सालों तक जनता का न कोई अधिकार है न औपचारिक सम्बंध। वह सिर्फ इन प्रतिनिधियों और राजनीतिक दलों के लिए वोट बैंक है। देश के हर स्तर पर प्रशासन में जो स्थिति है, वह लोकतंत्र के सर्वथा अनुरुप नहीं है। जहाँ लोकतंत्र की अवधारणा और हमारे संविधान की प्रस्तावना में भी**

उल्लिखित है कि संप्रभुता जनता में निहित है, देश में जनता और प्रशासनिक पदाधिकारियों, जो लोक सेवक हैं, का जन व्यवहार इसके एकदम विपरीत है।

जहाँ तक लोकतंत्र की दूसरी कसौटी का सम्बंध है, निम्नलिखित स्थिति है। यदि किसी गाँव की जनता खराब विधि–व्यवस्था से त्रस्त है या यदि उसके बच्चों को निम्न श्रेणी की ही शिक्षा उपलब्ध है तो स्थिति सुधारने के लिए वह आज भी लगभग उतना ही निस्सहाय है जितना वह आजादी के पहले थी। यही बात जनता के दैनिक जीवन की अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की है।

इस शासन व्यवस्था में नयी अर्थव्यवस्था

नब्बे के दशक में तथाकथित आर्थिक सुधार के नाम से देश में समाजवादी भावना और व्यवस्था की तिलांजलि दे कर इसकी अर्थ व्यवस्था को वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के हवाले कर दिया गया। देश में उपभोक्तावादी संस्कृति की आँधी आ गई। भारत का विशाल जन समूह विश्व में एक बड़ा बाजार बन गया। इस तरह भारत की जनता दोहरे शोषण का शिकार बन गई – एक गुलामी की शासन व्यवस्था में शासित के रूप में और दूसरे वैश्विक बाजार में उपभोक्ता के रूप में। जिस तरह से शासन व्यवस्था के लूटतंत्र में मुख्य रूप से वे लाभुक हैं जो शासन व्यवस्था के संचालन में निर्णायक भूमिका निभाते हैं और गौण रूप से वे लाभुक हैं जो इस 'लूट' में सहयोगी और सहायक की भूमिका में रहते हैं। उसी तरह भारत की जनता का उपभोक्ता के रूप मे शोषण में मुख्य लाभुक हैं देशी और विदेशी औद्योगिक और व्यापारिक प्रतिष्ठान और गौण रूप से वे भारतीय लाभुक हैं जो इन प्रतिष्ठानों में सहयोगी और सहायक की भूमिका में रहते हैं। वैश्विक औद्योगिक, व्यापारिक और सम्बद्ध प्रतिष्ठानों में कार्यरत ये सहयोगी और सहायक न सिर्फ भारतीय बाजार के लिए बल्कि वैश्विक बाजार के लिए भी उनके उत्पादन और प्रबंधन में सहयोग और सहायता करते हैं। सॉफ्टवेयर और अन्य सेवा क्षेत्रों के लिए भारत का यह शिक्षित और प्रशिक्षित वर्ग मानव संसाधन के रूप में उन प्रतिष्ठानों का उत्पादन बढ़ाने में योगदान करता है। चूँकि उनको अपने देशों, यथा अमेरिका और यूरोप, के मुकाबले यहाँ यह मानव संसाधन अपेक्षाकृत सस्ते में उपलब्ध हो जाता है, उनका उत्पादन वैश्विक बाजार में और भारतीय बाजार में भी प्रतिस्पर्द्धी हो जाता है। इस तरह तथाकथित आर्थिक सुधार की नीति से एक ओर जहाँ एक अपेक्षाकृत सम्पन्न मध्यम वर्ग का उदय और प्रसार हुआ है, वहीं दूसरी ओर भारत का विशाल निम्न मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग दोहरे शोषण – एक शासित के रूप में और दूसरे उपभोक्ता के रूप में – से और गरीब हुआ है। तथाकथित आर्थिक सुधार की नीति के बाद पिछले दो दशक में भारत में इने गिने लोगों में धन का संचय बढ़ा है और अमीरी–गरीबी की खाई चौड़ी हुई है।

पश्चिम से आई उपभोक्तावादी संस्कृति की आँधी ने न सिर्फ देश की आर्थिक व्यवस्था को कुप्रभावित किया बल्कि हजारों सालों की सभ्यता और संस्कृति से सम्पोषित और परिपक्व हुई हमारी सामाजिक और पारिवारिक संस्कृति की जड़ को भी हिला दिया। हमारी सुदृढ़ मान्याताएं बिखरने लगीं और हमारे सुगठित समाज और परिवार तनाव और अशांति के शिकार हो गए।

देश की जिस चिंतनीय आर्थिक स्थिति की मजबूरी में तथाकथित आर्थिक सुधार की नीति लागू की गयी उसे और उसमें हमारी शासन व्यवस्था की भूमिका को भी समझना आवश्यक है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नायकों और सेनानियों की आकांक्षाओं और कल्पना में स्वतंत्र भारत में समाजवादी व्यवस्था कायम करने की बात थी। बाद में ऐसी व्यवस्था की बात हमारे संविधान की मूल प्रस्तावना में भी विधिवत समाहित कर ली गयी। लेकिन हमारी शोषणात्मक शासन व्यवस्था के माध्यम से देश में समाजवादी व्यवस्था लाना असम्भव था। उल्टे इस प्रयास और इन नीतियों के चलते हमारी आर्थिक व्यवस्था में बहुत विकृतियां उत्पन्न हो गयीं। भ्रष्टाचार बढ़ गया, विकास की गति धीमी हो गयी और आयात–निर्यात में भारी असंतुलन के कारण देश का भुगतान संतुलन चिन्ताजनक निम्न स्तर पर पहुँच गया। इस समस्या से निजात पाने के लिए, आर्थिक संकट से उबरने के लिए और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के दबाव में देश के तत्कालीन रहनुमाओं ने भारत की चिरआकांक्षित और सुप्रतिष्ठित भावना और आदर्श समाजवादी व्यवस्था को नकार कर भारत की अर्थव्यवस्था को आर्थिक सुधार के नाम पर निजीकरण, वैश्वीकरण और उदारीकरण के हवाले कर दिया गया। इस तरह स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों और इस संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी के सपनों, भारत की विशाल जनता की आकांक्षाओं और हमारे संविधान में सन्निहित गणतंत्र भारत के उद्देश्य की तिलांजलि दे दी गयी। तात्कालिक रूप से तो देश आर्थिक संकट से निजात पा गया और अल्पकालिक रूप में भी लगा कि देश की आर्थिक प्रगति की रफ्तार तेज हो गयी। लेकिन भारत के सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य में दीर्घकालीन रूप से जो परिवर्त्तन हो रहा है वह हमारे सामने है और चिंतनीय है। **आज भारत का निम्न वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग**

दोहरे शोषण से अंतिम रूप से अभिशप्त है– एक शोषणात्मक शासन व्यवस्था में शासित के रूप में और दूसरे लाभोन्मुख अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता के रूप में। देश में गरीबी का दायरा बढ़ रहा है, इने–गिनों हाथों में धन संचय हो रहा है और अमीरी–गरीबी की खाई चौड़ी होती जा रही है। देश सम्भवतः नव साम्राज्यवाद या नव उपनिवेशवाद के चंगुल में जा रहा है।

इस शासन व्यवस्था में भारत – एक विहंगम दृष्टि

इस तरह हम देखते हैं कि इस शासन व्यवस्था में और इसके कारण देश में न समाजवादी अर्थव्यवस्था सफल हो सकी और न तथाकथित आर्थिक सुधार के नाम पर निजीकृत, वैश्वीकृत और उदारीकृत अर्थव्यवस्था में समावेशी सम्पन्नता की कोई झाँकी मिली। उल्टे दोनों ही प्रयासों में बहुत सी समस्याएं और विकृतियां उत्पन्न हो गयीं। स्पष्ट होना चाहिए कि दोनों ही स्थितियों में यही औपनिवेशिक शासन व्यवस्था रही है और हमारी असफलताओं, समस्याओं ओर विकृतियों के लिए हमारी नीति नहीं, यह शासन व्यवस्था ही जिम्मेदार रही है। यही नहीं, इस शोषणात्मक, लूटतंत्रात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था ने देश की कई अन्य समस्याओं और विकृतियों को भी जन्म दिया है। भ्रष्टाचार के अलावा देश की राजनीति में नैतिकता का घोर पतन तथा सामाजिक अशांति और अन्तर्विद्रोह इस शासन व्यवस्था का ही प्रतिफल है। इस शासन व्यवस्था में सत्ता का स्वरूप सेवात्मक नहीं, बल्कि शोषणात्मक और लूटतंत्रात्मक है, अतः राजनीति सत्ता केन्द्रित हो गयी है। सत्ता हासिल करना या कायम रखना ही राजनीति का एकमात्र उद्देश्य है, इसे प्राप्त करने की रणनीति में नैतिकता आड़े नहीं आती। 'बाँटो और राज करो' इस शासन व्यवस्था का औपनिवेशिक काल से ही मूल मंत्र रहा है। जहाँ अंग्रजों ने अपने शासन के स्थायित्व के लिए भारतीय समाज को और देश को भी धर्म के नाम पर बाँटा, वहाँ भारत के नेताओं ने सत्ता के लिए धर्म के अलावा समाज को जाति के आधार पर भी बाँट दिया। यह शासन व्यवस्था न लोकतांत्रिक है न समावेशी है। जनता सिर्फ वोट बैंक बन कर रह गयी है, शासन में उसका कोई प्रभावी भागीदारी या भूमिका नहीं है। इस शासन व्यवस्था में समाज के वंचित वर्ग की कोई सुनवाई या त्राण नहीं है। यह या तो कुंठा को जन्म देती है या बगावत को। इस व्यवस्था में अन्तर्विद्रोह मिट नहीं सकता। इस लूटतंत्रात्मक शासन व्यवस्था में लूट में हिस्सेदारी या इसका लाभुक बनने की होड़ है। अतः यह व्यवस्था सामाजिक अशांति को जन्म देती है। समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा आरक्षण की माँग, प्रदर्शन और उपद्रव शासन व्यवस्था के इसी स्वरूप को उजागर करती है।

अतः हम देखते हैं कि देश में आज जो गरीबी है, भ्रष्टाचार है, सामाजिक अशांति और अंतर्विद्रोह है, राजनीति में नैतिकता का जो अधोपतन है वह सब हमारी शासन व्यवस्था के चलते हैं, जो शोषणात्मक और लूटतंत्रात्मक है। **यह मूलतः औपनिवेशिक शासन व्यवस्था या गुलामी की व्यवस्था है, एक स्वतंत्र और लोकतंत्र राष्ट्र की नहीं।** ऐसी व्यवस्था में न हमारी संस्कृति की उत्कृष्टता और नैतिकता का हमारा उच्च मापदंड हमारे वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में प्रभावी रह सकता है और न हमारी प्रतिभा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हो सकती है। इसके प्रस्फुटन के लिए जो स्वतंत्रता और स्वाधीनता का वातावरण आवश्यक है, वह अभी हमारे देश में नहीं है। अभी भी जिस देश में यह वातावरण है, वहाँ भारतीय प्रतिभा प्रस्फुटित हो रही है। आजादी के बाद किसी भारतीय ने भारत में रहकर और काम कर नोबेल पुरस्कार नहीं प्राप्त किया, जब कि इसी अवधि में कई भारतीय दूसरे देशों में रहकर और काम कर नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत हुए हैं।

हम याद करें भारत के स्वतंत्रता संग्राम को और इसके महानायक महात्मा गाँधी को। उन्होंने कई अवसरों पर कहा था कि स्वतंत्रता संग्राम का हमारा उद्देश्य है गुलामी की इस व्यवस्था से भारत को मुक्त करना, जिसने इसकी इतनी दुर्दशा कर दी है, मात्र अंग्रेजों को भारत से भगाना नहीं। अपनी दूरदृष्टि में उन्होंने यह चेतावनी भी दी थी कि यदि अंग्रेज भारत से चले गए और इसी व्यवस्था को रखते हुए इसके संचालक भारतीय हो गए तो देश की दुर्दशा सुनिश्चित है। **यह हमारा दुर्भाग्य है कि आज गुलामी की उसी शासन व्यवस्था में देश जी मर रहा है।**

विडम्बना तो यह है कि हमें चारों ओर से कहा जा रहा है और हर मंच से उद्घोषित किया जाता है कि भारत एक स्वतंत्र देश है, भारत एक लोकतंत्र है। दुःखद तो यह है कि बीमारी रहते हुए भी हमें स्वस्थ होने का भ्रम पैदा किया जाता है। यदि हमें देश को पूर्ण रूप से स्वतंत्र करना है, इसमें वास्तविक लोकतंत्र लाना है और देश एवं दुनिया को हमारी संस्कृति, नैतिकता और प्रतिभा से प्रभावित और लाभान्वित करना है तो गुलामी की इस शासन व्यवस्था की बेड़ी से हमें इसे मुक्त करना होगा।

◆

लोकतंत्र की अवधारणा और लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की रूपरेखा

लोकतंत्र की अवधारणा शासन पद्धति से सम्बंधित है, मानव जीवन के मूल्यों या मान्यताओं तथा सामाजिक व्यवस्था से इसका कोई सीधा सम्बंध नहीं है, हालांकि लोकतन्त्र सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक व्यवस्थाओं पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। सभ्यता के उदय और विकास के साथ–साथ शासन व्यवस्था की प्रासंगिकता, आवश्यकता और महत्ता भी स्पष्ट होने लगी। इसी क्रम में भारत में और अन्य देशों में भी शासन व्यवस्था के रुप में राजतंत्र का उदय हुआ जिसमें शासन की पूरी शक्ति राजा में केन्द्रित थी। भारत में आदर्श राजा के रुप में सबसे शक्तिमान, विवेकशील और न्याय प्रिय व्यक्ति की कल्पना थी।

लोकतंत्र की अवधारणा शासन पद्धति से सम्बंधित है, मानव जीवन के मूल्यों या मान्यताओं तथा सामाजिक व्यवस्था से इसका कोई सीधा सम्बंध नहीं है, हालांकि लोकतन्त्र सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक व्यवस्थाओं पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। सभ्यता के उदय और विकास के साथ–साथ शासन व्यवस्था की प्रासंगिकता, आवश्यकता और महत्ता भी स्पष्ट होने लगी। इसी क्रम में भारत में और अन्य देशों में भी शासन व्यवस्था के रुप में राजतंत्र का उदय हुआ जिसमें शासन की पूरी शक्ति राजा में केन्द्रित थी। भारत में आदर्श राजा के रुप में सबसे शक्तिमान, विवेकशील और न्याय प्रिय व्यक्ति की कल्पना थी। हजारों साल से भारत में मर्यादा पुरुषोत्तम राम की छवि आदर्श राजा के रुप आज भी जीवंत है। भारत के इतिहास में प्रमुख राजाओं में अशोक, विक्रमादित्य, अकबर, इत्यादि अपने राज्य के सुशासन, विकास, सम्पन्नता और सुकीर्तियों के लिए जाने जाते हैं। विश्व के अन्य देशों में भी मुख्य रुप में राजतंत्रीय शासन पद्धति ही प्रचलित थी और अर्वाचीन युग में भी किसी न किसी रुप में राजतंत्र अभी भी कायम है, भले ही उसका कार्यकारी स्वरुप बदल चुका है, जैसे ब्रिटेन, जापान और यूरोप के कई देशों में।

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरुप जब विश्व में उपनिवेशवाद का उदय हुआ तो भारत ही नहीं, दुनिया के बहुत से देश इस उपनिवेशवाद के शिकार हो गए और औपनिवेशिक शासक देश के गुलाम हो गए। उपनिवेशवाद के शिकार इन देशों में कई ऐसे थे जो अपने शासक देश की तुलना में ज्यादा बड़े, सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में ज्यादा समृद्ध और ज्यादा सम्पन्न भी थे जैसे भारत में। **उपनिवेशवाद विश्व इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। उपनिवेशवाद एक ऐसी व्यवस्था थी जिसके चंगुल से निकलना टेढ़ी खीर थी। उपनिवेशवाद एक ऐसा मीठा जहर था जिसके कहर से निजात पाने की न कोई दवा थी, न कोई अस्त्र। लेकिन जिस तरह उपनिवेशवाद**

एक अभूतपूर्व ऐतिहासिक घटना थी, उसी तरह युगपुरुष महात्मा गाँधी का अवतरण भी था। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में इसके महानायक महात्मा गाँधी के अहिंसक असहयोग आंदोलन के अनूठे अस्त्र से हतप्रभ अंग्रेजों को भारत को 15 अगस्त 1947 को राजनीतिक स्वतंत्रता देनी पड़ी। इस अनूठे अस्त्र का ऐसा व्यापक प्रभाव हुआ कि उपनिवेशवाद भारत से ही नहीं गया, विश्व के अन्य उपनिवेश भी तास के पत्ते की तरह धराशयी हो गये।

लेकिन महात्मा गाँधी के प्रेरणा–दायक नेतृत्व में संचालित भारत के मुक्ति संग्राम में राजनीतिक स्वतंत्रता तो एक पड़ाव था। लक्ष्य था भारत को उस शोषणात्मक और अनैतिकतापरक औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से मुक्त करना जिसने सुजलाम् सुफलाम् और शस्य श्यामलाम् भारत को दरिद्र और बदहाल कर दिया था। लक्ष्य था इसे हटाकर भारत में जनता का राज कायम करना, स्वराज लाना, लोकतंत्र स्थापित करना। लेकिन दुर्भाग्यवश जब राजनीतिक रुप से स्वतंत्र भारत में हम अपने संविधान निर्माण के माध्यम से ऐसा करने में सक्षम हो गए थे तो निवर्तमान और औपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार के कुचक्र से, भारत के कुछ प्रभावशाली वर्गों के निहित स्वार्थ से और महात्मा गाँधी के शीर्ष अनुयायियों में भी अपने नेता की दिव्य दृष्टि में अपूर्ण आस्था के चलते भारत ने अपने संविधान में मूलतः वही औपनिवेशिक शासन व्यवस्था अपना कर न सिर्फ अपने प्रेरणादायक नेता के प्रति विश्वासघात किया बल्कि भारत की मुक्ति को लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सके। हम भारत में लोकतंत्र नहीं स्थापित कर सके। मूलतः औपनिवेशिक शासन व्यवस्था पर ही तथाकथित संसदीय लोकतन्त्र की भ्रामक चादर ढँक कर वास्तविक लोकतंत्र का अहसास भर कर लिया। वास्तविक लोकतंत्र अभी भारत से कोसों दूर है। इसे समझने के लिए लोकतंत्र की अवधारणा को समझना आवश्यक है।

राजतंत्र में राज्य की पूरी सत्तात्मक शक्ति या संप्रभुता राजा में निहित होती है। इसी संप्रभुता का उपयोग कर वह अपने पदाधिकारियों और कर्मचारियों को अधिकृत करता है और उनके माध्यम से राज चलाता है। यदि राज चलाने में राजा अपनी बुद्धि और विवेक से अपनी संप्रभुता का उपयोग करता है तो उसके राज्य में शांति, सुव्यवस्था और सम्पन्नता होगी, प्रजा सुखी होगी। यदि राजा ऐसा नहीं है, तो उसके राज में विपरीत परिस्थितियां उत्पन्न होंगी और प्रजा दुखारी होगी। चूँकि राजतंत्र में राजा आनुवंशिक होता है, जनता या प्रजा का इसमें कोई अधिकार नहीं है, राजतंत्र में यह खतरा हमेशा बना रहता है। इसी खतरा और राजतंत्र की अन्य खामियों के मद्देनजर शासन पद्धति के रूप में लोकतंत्र का आविर्भाव हुआ। लोकतंत्र में संप्रभुता एक व्यक्ति में नहीं, जनता में निहित होती है, जैसे भारतीय दर्शन में हर व्यक्ति में आत्मा के रुप में सर्वशक्तिमान परमात्मा का अंश विद्यमान है। जनता में निहित इसी संप्रभुता को लेकर शासन पद्धति को संचालित करने वाली लोकतांत्रिक सरकार बनती है। लोकतांत्रिक सरकार की तीन अनिवार्य शर्तें हैं। इसके निर्णय कर्त्ता सम्बद्ध जनता द्वारा निर्वाचित होंगे, ये निर्णयकर्त्ता सम्बद्ध जनता के प्रति ही उत्तरदायी होंगे और किसी के प्रति नहीं, और अपने निर्धारित विषय क्षेत्र को निष्पादित करने के लिये इनके पास पर्याप्त आर्थिक संसाधन और प्रशासनिक अधिकार और क्षमता है। ऐसी सरकार में जनता की संप्रभुता स्पष्ट रुप से परिलक्षित होती है। सरकार ''जनता के द्वारा, जनता के लिए और जनता की'' के लोकतन्त्र के आदर्श के बहुत समीप होती है। ऐसी लोकतांत्रिक सरकार अपने अपने विषय क्षेत्रों में प्रभावी, दक्ष और सशक्त होगी।

ऐसी सरकार को कार्यरुप में लाने के लिए लोकतांन्त्रिक सरकार की संरचना लोकतन्त्र के अनुरुप होनी चाहिए। महात्मा गाँधी ने इस संरचना का दृष्टांत इस रुप से दिया था। जैसे एक शांत झील में एक पत्थर गिराने से उसके संघात बिन्दु से संकेन्द्रित तरंगे उत्पन्न होती हैं। जो तरंग संघात बिन्दु से समीप होती है वह ज्यादा प्रबल होती है, जैसे–जैसे तरंगें संघात बिन्दु से दूर होंगी, प्रबलता कम होती जायेगी लेकिन उनसे प्रभावित क्षेत्र बढ़ता जायेगा। तरंग की तुलना लोकतन्त्रीय सरकार से की जा सकती है और उससे प्रभावित क्षेत्र की तुलना उस सरकार से सम्बद्ध भौगोलिक क्षेत्र से। हर स्तर की सरकार का विषय क्षेत्र स्पष्टतः परिभाषित होगा और उन विषयों को कार्यरुप में लाने के लिए उनसे सम्बद्ध सरकार आर्थिक और प्रशासनिक रुप से पूर्णतः स्वायत्त और सक्षम होगी। इस तरह की शासन व्यवस्था में किसी स्तर की सरकार किसी दूसरे स्तर की सरकार से उपर या नीचे नहीं होगी। हर स्तर की सरकार अपनी शक्ति और क्षमता संघात बिन्दु यानी जनता से पायेगी। व्यावहारिक दृष्टिकोण से भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर तीन स्तर की सरकारें पूरे देश को सुशासित और विकसित, उसकी सभी समस्याओं का प्रभावी निदान ओर उसकी सभी व्यवस्थाओं को सुचारू रूप से संचालित कर सकती है – जनता के सबसे पास गाँव या शहर के स्तर पर, राज्य के स्तर पर और पूरे देश के स्तर पर। शासन को सुविधापूर्ण या कम खर्चीली बनाने के लिए गाँव या शहर के स्तर तथा राज्य के स्तर के बीच किसी और स्तर पर, यथा ताल्लुक या

जिला स्तर पर भी सरकारें हो सकती हैं। विकसित लोकतंत्र में जन जीवन के किसी विशेष महत्त्व के विषय के समुचित निष्पादन के लिए विशेष उद्देशीय सरकार भी हो सकती है, जैसे किसी क्षेत्र की स्कूली शिक्षा के गुणवत्तापूर्ण प्रबंधन के लिए उस क्षेत्र की जनता द्वारा निर्वाचित एक 'स्कूल बोर्ड' होता है जिसे उस क्षेत्र के स्कूलों के प्रबंधन, विकास और संचालन का स्वायत्त अधिकार है और उसके पास इसके लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन और पूर्ण प्रशासनिक अधिकार है, यथा स्कूल के शिक्षकों की नियुक्ति और सेवा समाप्ति, इत्यादि। स्कूलों के लिए एक तरह से यह सरकार ही है, जिसके कार्यों में न उस गाँव या शहर की सरकार, न राज्य सरकार और न केन्द्रीय सरकार हस्तक्षेप कर सकती है। इसमें सिर्फ उस 'स्कूल डिस्ट्रिक्ट'' की जनता की ही भूमिका है।

भारत के सन्दर्भ में ऐसी लोक–तांत्रिक शासन व्यवस्था में सरकार की संरचना को समझने की सहूलियत के लिए मुख्य रुप से तीन स्तर पर सरकारें होंगी। गाँव या शहर के स्तर पर, राज्य के स्तर पर और फिर देश के स्तर पर। हर स्तर की सरकार के लिए उसका विषय क्षेत्र तर्कसंगत और स्पष्ट रूप से निर्धारित होगा। मोटे रूप से गाँव या शहर के स्तर पर सरकार का विषय क्षेत्र होगा – पेय जल की व्यवस्था, उस गाँव या शहर की सड़कों और नालियों का विकास और रखरखाव, स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, विधि व्यवस्था और उसके वासियों के दैनिक जीवन से सम्बंधित अन्य विषय। राज्य स्तर पर सरकार का विषय क्षेत्र मोटे और मुख्य रूप से निम्नलिखित होगा – उच्च शिक्षा, राज्य स्तरीय परिवहन व्यवस्था, जल संसाधन का विकास एवं प्रबंधन, इत्यादि। इसी तरह देश के स्तर पर सरकार के विषय–क्षेत्र में ऐसे विषय आएंगे जो पूरे देश और देशवासियों से सम्बंध रखते हैं, यथा देश की सुरक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध, डाक एवं संचार व्यवस्था, अंतरिक्ष विज्ञान और प्रोद्योगिकी का विकास और उपयोग, राष्ट्रव्यापी सड़क, रेल, वायु और जल परिवहन, इत्यादि। इस लेख में तीनों स्तरों की सरकारों के विषय क्षेत्रों का विस्तृत ब्योरा नहीं दिया गया है। लेकिन कोई विषय क्षेत्र किस स्तर की सरकार के अन्दर रहना चाहिये, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वह विषय किस भौगोलिक क्षेत्र और उसके निवासियों से सम्बंध रखता है और उसका निष्पादन किस स्तर की सरकार द्वारा सबसे प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में किसी भी स्तर की सरकार ''जनता के द्वारा, जनता के लिए और जनता की'' के आदर्श के यथा संभव समीप होना चाहिए। इसलिए हर स्तर की सरकार का शासनाध्यक्ष उस क्षेत्र की जनता से सीधे निर्वाचित होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है तो सैद्धांतिक रूप से वह उस क्षेत्र की सरकार का मुखिया के रूप में पूरी जनता का प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता। शासनाध्यक्ष के सहयोगी जो सरकार में शामिल होते हैं और शासन के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते हैं, उनके चुनाव में भी जनता की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहभागिता होनी चाहिए। तभी वह सरकार ''जनता की सरकार'' कही जा सकती है।

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की इसी रूपरेखा में वास्तविक लोकतंत्र प्रस्फुटित हो सकता है और लोकतंत्र की महती शक्ति कार्यरूप में प्रकट हो सकती है। इस व्यवस्था में भ्रष्टाचार पनप नहीं सकता; सामाजिक असंतोष, उत्पीड़न और अन्तर्विद्रोह आधार–हीन हो जायेगा और राजनीति में गुणात्मक परिवर्त्तन आ जायेगा। हर स्तर की सरकार बहुत ही सशक्त और प्रभावी होगी क्योंकि उसे केवल अपने निर्धारित विषय क्षेत्रों पर ही पूरा ध्यान केन्द्रित करना है। यदि कोई विषय क्षेत्र ऐसा है कि उससे एक से अधिक स्तरों की सरकारों से सम्बंध रखता है तो उस विषय क्षेत्र में सम्बद्ध सरकारों की भूमिका स्पष्ट रूप से परिभाषित रहेगी जिससे कोई द्वैधता की स्थिति न हो।

आधुनिक काल में सर्वप्रथम अमेरिका (संयुक्त राज्य अमेरिका) ने औपनिवेशिक शक्तियों को परास्त कर अपने देश में संविधान के माध्यम से 1780 ई० में लोकतन्त्र स्थापित किया। अमेरिका की लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था में करीब–करीब पूरी तरह लोकतंत्र की उपर्युक्त अवधारणा व्याप्त है और दो सौ वर्षों से ज्यादा सफलतापूर्वक कार्यशील है। इस तरह अमेरिका आधुनिक विश्व का सबसे पुराना लोकतन्त्र है जो आज भी सफलतापूर्वक ही नहीं, उत्कृष्टतापूर्वक चल रहा है। प्रायः तीन सौ वर्षों पूर्व स्थापित इस नये देश ने आज हर क्षेत्र में उत्कृष्टता की जिन ऊँचाइयों को पाया है और आज भी प्रगति के पथ पर निरन्तर अग्रसर हैं उसमें इसकी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की बहुत बड़ी भूमिका है।

यदि भारत में ऐसी लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था, गाँव से लेकर केन्द्र तक स्थापित हो जायेगी तो सवा सौ करोड़ लोगों का यह लोकतंत्र इतना सशक्त होगा कि चहुँमुखी विकास और समावेशी सम्पन्नता की राह पर तेजी से बढ़ने से इसे कोई भी और कुछ भी रोक नहीं सकता।

◆

राष्ट्रीय काया-कल्प

एक चिन्ता : एक चिन्तन

– डॉ. लक्ष्मी निधि

किसी गाँव में एक मंदिर इतना पुराना था कि वह पूर्णतः जीर्ण–शीर्ण हो गया था। कहीं उसकी छत हहर रही थी तो कहीं उसकी दीवारें ढह रही थीं। लगता था वह अब गिरा – तब गिरा, इसीलिए लोग उस मंदिर में स्थापित महादेव को दूर से प्रणाम करते थे। उस मंदिर में कौन जाये अपनी जान गँवाने। एक दिन उस गाँव के लोगों की एक आम सभा हुई। उसमें गाँव भर के लोगों ने भाग लिया। मंदिर की बात थी, सभी चाहते थे, गाँव का यह प्राचीन मंदिर है, उसका जीर्णोद्धार होना चाहिए।

इस आलेख का शीर्षक यह खबर देता है कि देश की ऐसी दुर्दशा हो चुकी है कि, इसके कायाकल्प करने की आवश्यकता है। जब कोई कपड़ा चिथड़ा–चिथड़ा हो जाये, तो उसमें पेबंद लगाने से वह पहनने लायक नहीं होता। वे पेबंद उस वस्त्र को और भी बेपर्द कर देंगे। वे पेबंद उस वस्त्र की दीनता और हीनता को और भी उजागर करने वाले होंगे। इसका हल है चिथड़े–चिथड़े हुये कपड़े को हटा देना ही उचित होगा। वस्त्र परिवर्तन ही उस जीर्ण–शीर्ण कपड़े का कायाकल्प होगा।

किसी गाँव में एक मंदिर इतना पुराना था कि वह पूर्णतः जीर्ण–शीर्ण हो गया था। कहीं उसकी छत हहर रही थी तो कहीं उसकी दीवारें ढह रही थीं। लगता था वह अब गिरा – तब गिरा, इसीलिए लोग उस मंदिर में स्थापित महादेव को दूर से प्रणाम करते थे। उस मंदिर में कौन जाये अपनी जान गँवाने।

एक दिन उस गाँव के लोगों की एक आम सभा हुई। उसमें गाँव भर के लोगों ने भाग लिया। मंदिर की बात थी, सभी चाहते थे, गाँव का यह प्राचीन मंदिर है, उसका जीर्णोद्धार होना चाहिए। उस जनसभा में सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि गाँव के इस प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार किया जाना चाहिए। इस प्रस्ताव का सबों ने तालियों की गड़गड़ाहट से अनुमोदन किया और वह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया।

उस सभा में दूसरा प्रस्ताव आया, यह मंदिर बहुत चरमरा गया है, अब यह टिकने वाला नहीं है। इसलिए इस मंदिर को ढाह कर नया मंदिर बनाना चाहिए। इस प्रस्ताव को भी गाँव वालों ने तुमूल कर्तल ध्वनि से पारित कर दिया। वहाँ तीसरा प्रस्ताव आया चूँकि, यह गाँव का प्राचीन मंदिर है, इसको हमारे पूर्वजों ने बनाया था। इसीलिए यहाँ प्रस्तावित नया मंदिर तो बने, लेकिन जिस नींव पर यह प्राचीन मंदिर खड़ा है, उसी पुरानी नींव पर यह नया मंदिर भी बनाया जाये।

सभा में यह तीसरा प्रस्ताव भी तालियों की गड़गड़ाहट के साथ स्वीकृत हो गया। चौथा प्रस्ताव आया, चूँकि, हमारे गाँव का यह प्राचीन मंदिर है, इसके निर्माण में लगे ईंट, पत्थर, लकड़ी, आदि पूर्वजों की धरोहर है, इसीलिए उन्हें कचड़ों के रूप में नहीं फेंकी जायें, वरन् इस नये मंदिर के नवनिर्माण में प्राचीन काल की इन अनमोल वस्तुओं का उपयोग हो। लोगों ने इस चौथे प्रस्ताव को भी सर्वसम्मति से सहज स्वीकार कर लिया। तब, आया पाँचवाँ अंतिम प्रस्ताव, हम नया मंदिर बनायेंगे उसी जगह पर

और उसी पुरानी नींव पर नये मंदिर की नींव रखेंगे, मगर जब तक हम नया मंदिर नहीं बनायेंगे उस नींव पर, तब तक इस पुराने मंदिर को नहीं तोडेंगे। सबों ने इस प्रस्ताव को जोरदार तालियों से समर्थन किया। सभा विसर्जित हो गयी।

एक स्कूली छात्र ने अपने दादा से पूछा – दादा जी, जब तक पुराना मंदिर वहाँ से नहीं हटेगा तब तक उसी जगह उसी स्थान पर नया मंदिर कैसे बनेगा? दादा ने कहा – तू चुप कर। तू अभी बच्चा है, नहीं समझेगा। यह जनतंत्र है। इसमें जनमत ही सर्वोपरि होता है। उसमें बुद्धि का बखेड़ा नहीं चल सकता। उस गाँव का वह पुराना मंदिर आज भी वहीं हवा में हिल रहा है। मगर उस नये मंदिर के नवनिर्माण के उस प्रस्ताव पर आज भी जोर–शोर से गरमा–गरम बहस होती रहती है। पुराने मंदिर से चिपके लोग अपने पहले प्रस्ताव से आज भी चिपके हैं। नये परिवर्तन के लिए पुराने से चिपके रहने से काम नहीं चलेगा।

किसी पौधे का बीज यह जिद्द कर बैठ जाये कि वह जमीन के अंदर नहीं जायेगा तो वह बीज अंकुरित नहीं हो सकेगा। वह पौधा नहीं बनेगा – जब तक वह माटी में मिलेगा नहीं, तब तक वह पौधा नहीं बन सकेगा। बड़ा वृक्ष नहीं बनेगा, खेतों में फसलें बनकर नहीं लहरायेगा। चमन में गुलिस्ताँ बनकर नहीं मुस्कुरायेगा। दाना खाक में मिलकर गुले, गुलजार होता है।

जीवन की जीवन्तता उसकी जय यात्रा में होती है। नदी जब बहती है, तभी उसमें लहरें उठती हैं। सूखी नदियों में लहरें नहीं उठतीं। इसलिए जब हम नया भारत गढ़ने की बात करते हैं तो विकास की, परिवर्तन की यात्रा प्रारंभ करनी होगी। नयी लहरें उठेंगी, नया तूफान खड़ा होगा, नयी क्रान्ति का शंख बजेगा, तभी राष्ट्रीय काया–कल्प के लिए संपूर्ण जल–जला मचाने वाली ज्वालामुखी फूट पड़ेगी।

मथुरा के चार पंडों के मन में यह बात आयी कि चाँदनी रात में यमुना में नौका विहार करते हुये हमलोग क्यों न आगरा चलें। चाँदनी रात में यमुना में आगरा के ताजमहल की छवि सर्वाधिक आनन्द देने वाली होती है। चारों पंडे यमुना के किनारे आये। वहाँ एक नाव किनारे में खड़ी थी। उसमें चारो पंडे बैठ गये। बैठने के पूर्व चारों पंडों ने छक कर भांग पी ली। उन चारों ने कहा – बिना शंकर बूटी के नौका विहार का क्या मजा? वे चारों पंडे, फेरा–फेरी, उस नाव को लगे खेने। ज्यों–ज्यों रात चढ़ने लगी, उन चारों पंडों पर नशा भी खूब चढ़ने लगा। नशा में उन सबों को, यमुना के जल में ताजमहल की खूबसूरती दिखायी पड़ने लगी। वे चारों नाव में बैठे भांग के नशे में हँसी के मारे लोट–पोट हो रहे थे। सुबह हो गयी, चारों पंडों की पत्नियाँ यमुना में जल लेने के लिए अपने–अपने घड़े लेकर पहुँचीं तो उन सबों ने देखा – अरे उनके पतिदेव तो नौका में बैठे ठहाके लगा रहे हैं। उन स्त्रियों ने कहा – हमलोग रात भर उनकी प्रतीक्षा में बैठी–बैठी रात आँखों में गुजार दी। उन चारों पंडिताइनों ने अपने–अपने घड़ों में यमुना का ठंडा पानी भरकर अपने–अपने पतिदेव के सिर पर उढ़ेल दिया।

सिर पर ठंडे पानी की धारा पड़ी तो उन चारों पंडों की आँखें भक से खुल गयीं। भांग के नशे को ठंडा पानी ही उतारता है। चारों पंडों ने देखा अरे! यह तो हम लोगों की घरवाली हैं, तो क्या हम मथुरा में ही हैं? रात भर नाव खेते रहे तब भी मथुरा में कैसे रह गये? चारों पंडिताइनों ने कहा–हे ज्ञान गंर्धव पंडितों, आप सब मथुरा में ही हैं। आप जिस नाव पर बैठे हैं, वह नाव यमुना के तट पर एक मोटे खूँटे से बंधी है। खूँट में बंधी नाव पर सवार हो आप लाख पतवार चलाओ वह वहीं एक स्थान पर हिल–डुल तो करेगी, मगर वह आगे नहीं बढ़ेगी। चारों पंडों ने देखा, उनकी नाव एक मोटा रस्सा से घाट पर गड़े खूँटा से बँधी हुई है।

हम बहुत तरह के खूँटों से बंधे हैं। कहीं जाति के खूँटा से, तो कहीं धर्म के

किसी पौधे का बीज यह जिद्द कर बैठ जाये कि वह जमीन के अंदर नहीं जायेगा तो वह बीज अंकुरित नहीं हो सकेगा। वह पौधा नहीं बनेगा– जब तक वह माटी में मिलेगा नहीं, तब तक वह पौधा नहीं बन सकेगा। बड़ा वृक्ष नहीं बनेगा, खेतों में फसलें बनकर नहीं लहराएगा। चमन में गुलिस्ताँ बनकर नहीं मुस्कुराएगा। दाना खाक में मिल कर गुले–गुलजार होता है। जीवन की जीवन्तता उसकी जय यात्रा में होती है। नदी जब बहती है, तभी उसमें लहरें उठती हैं।

खूँटे से, कहीं प्रान्त के खूँटे से, कहीं भाषा के खूँटे से, कहीं 'वादों' के खूँटे से, हमें ये सारे खूँटे उखाड़ने होंगे, तभी हमारे राष्ट्रीय काया–कल्प की जय यात्रा आगे बढ़ेगी, नहीं तो हम रात भर पतवार चलाते रह जायेंगे। और आगरा ना पहुँचकर मथुरा में ही रह जायेंगे। मंजिल पर पहुँचना है तो खूँटे उखाड़ने होंगे। राष्ट्र को नया कलेवर देना है तो उसके पुराने कलेवर उतारने होंगे।

पतझड़ पेड़ के जीर्ण–शीर्ण पत्ते झाड़कर गिरा देगा तभी, वसंत आयेगा। पेड़ों मे नयी–नयी कोपलें निकलेंगी, नये–नये फूल पत्ते आयेंगे। नया भारत गढ़ना है, राष्ट्रीय कायाकल्प करना है तो इसके विकास के लिए हमें दो बिन्दुओं का निर्धारण करना होगा। एक बिन्दु वह जहाँ से हमें परिवर्तन की यात्रा प्रारंभ करनी है और दूसरी बिन्दु वह जहाँ हमें पहुँचना है, यही हमारे मंजिल के संघर्ष का मार्ग होगा। इसी अग्निपथ पर नये क्रान्तिदूत बनकर राष्ट्रीय काया–कलप के लिए महा समर में हमें उतरना होगा।

काया–कल्प का अर्थ है– पूर्ण रूपान्तरित करना। च्यवन मुनि ने अपने को वृद्धा अवस्था से मुक्त करने के लिए एक दवा का आविष्कार किया था – उसका नाम पड़ा च्यवनप्राश। उसके सेवन से वृद्ध च्यवन मुनि पूर्णरूपेण युवा

हो गये। आज च्यवनप्राश आम बाजार में मौजूद है। लोग वर्षों से खा रहे हैं। मगर किसी वृद्ध को जवान होते हुए नहीं देखा गया। जवान व्यक्ति भी च्यवनप्राश खाता है, तो वह उसका सेवन करते–करते बूढ़ा हो जाता है। उसकी जवानी ठहरती नहीं है, बेचारी जवानी वृद्धावस्था की खुराक बन जाती है। राष्ट्रीय कायाकल्प के लिए च्यवनप्राश जैसी कोई दवा के आविष्कार से काम नहीं चलेगा। एक ही चाभी से सभी ताले नहीं खुलते। एक ही उत्तर से सभी प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता। नई–नई समस्यायें आती हैं तो नये–नये समाधानों की तलाश करनी होगी। आजादी के बाद, देश के सभी राजनीतिक दलों को सरकार चलाने का मौका मिला। अकेली पार्टी ने भी सरकार चलायी और छोटी–छोटी पार्टियों की सरकार चलाने का हमें अनुभव प्राप्त है।

जयप्रकाश नारायण ने सत्ता–परिवर्तन का जो आन्दोलन चलाया, उसमें देश के सभी बड़े–बड़े राजनीतिक दलों ने अपनी–अपनी पार्टी तोड़कर जनता पार्टी नामक एक दल बनाया।

जे.पी. ने घोषणा की, जनता पार्टी की सरकार जो मोरारजी देसाई के नेतृत्व में केन्द्र में बनी है, वह देश में व्यवस्था परिवर्तन लायेगी। मगर, ढाँक के वही तीन पात। सारे राजनीतिक नेताओं ने जनता पार्टी से अलग होकर फिर अपने–अपने राजनीतिक दल बना लिये। जनता पार्टी पानी के बुलबुले की तरह फूट कर पानी में विलीन हो गई, और जनता पार्टी की सरकार ताश के पत्तों से बने महल की तरह लड़खड़ा कर धराशायी हो गयी। सत्ता के लोलुप सत्ता के बिना जीवित नहीं रह सकते। अलग–अलग पार्टी बनाकर उसके मठाधीश बन कर जो मजा उन्हें मिल रहा था वह मजा जनता पार्टी के साथ रह कर नहीं मिल रहा था।

मोरारजी सरकार चल नहीं पायी। जे.पी. बहुत निराश हो गये। उनसे जो लोग अंतिम काल में मिलने जाते थे, जे. पी. कोई राय या सुझाव नहीं देते थे। वह यह कहते–कहते चले गये – केवल हुकूमत बदलने से देश की व्यवस्था नहीं बदलेगी। व्यवस्था बदलने के लिए सम्पूर्ण क्रान्ति की आवश्यकता है। सम्पूर्ण क्रान्ति जनता ही करेगी। मोरारजी भाई देसाई की सरकार ने व्यवस्था के बदलावों का बड़ा अवसर गँवा दिया। जब भी कोई राष्ट्रीय मुद्दा सामने आता है, राजनेता कहते हैं, हमें राजनीति से ऊपर उठकर सम्पूर्ण देश को दृष्टि में रख कर विचार करना होगा। राष्ट्रीय काया–कल्प एक बड़ा राष्ट्रीय मुद्दा है। इस मुद्दे पर विचार के लिए दलीय राजनीति नहीं, राष्ट्रीय राजनीति को विचार और आचरण में उतारना होगा।

राजनीति को लोकनीति के पथ पर उतारना होगा, तभी राष्ट्रीय काया–कल्प की यात्रा प्रारंभ हो पायेगी। इस जय यात्रा में अलग–अलग पंडे और अलग– अलग झंडे नहीं होंगे। हम एक बनकर, नेक बनकर नया भारत बनायेंगे, तभी उसका राष्ट्रीय काया– कल्प हो सकेगा। हमारे देश में राष्ट्रीय काया–कल्प के लिए एक और बड़ा जन आन्दोलन की आवश्यकता है। तभी यह देश नेतातंत्र से मुक्त होगा और तभी इस देश के महाव्योम में नये लोक तंत्र का सूरज उदय होगा। मगर हम प्रतीक्षा में बैठे न रहें, प्रयास में उतरें क्योंकि बिना प्रयास के, बिना संघर्ष के, राष्ट्रीय काया–कल्प का महाभारत यहाँ की जनता नहीं जीत सकेगी। इस नये कुरूक्षेत्र में न कृष्ण होंगे और न अर्जुन आयेगा। हमें ही इस कुरूक्षेत्र में उतरना होगा और उसी कुरूक्षेत्र के गर्भ से राष्ट्रीय काया–कल्प का अवतरण होगा।

(इसके लेखक नेपाल में अर्थशास्त्र के प्रध्यापक तथा टाटा स्टील के 'हाउस जर्नल' के सम्पादक रह चुके हैं, अखिल भारतीय पत्रकार, रचनाकार और समाज सेवक संघ के अध्यक्ष रहे हैं तथा साहित्य सेवा क्षेत्र में अनेक अलंकरणों से सम्मानित किए गए हैं। कुष्ठ सेवा क्षेत्र में ''झारखंड के गाँधी'' कहे जाते हैं जिस पर इन्टरनेट पर एक लघु फिल्म भी बनी है। भारतीय स्तर के पाँच काव्यग्रथों के रचयिता रह चुके डॉ० लक्ष्मी निधि अभी भी साहित्य रचना में सक्रिय हैं।)

◆

पाठकों से

''राष्ट्रीय कायाकल्प'' में प्रतिपादित विश्लेषणों, विचारों और कार्यक्रमों के संबंध में आपके विचारों, सुझावों और प्रतिक्रियाओं का हम स्वागत करेंगे। इसके लिए आप हमसे निम्नलिखित रूप में संपर्क स्थापित कर सकते हैं :

1. संपादक के नाम पत्र से : पता – डा. टी. प्रसाद, 173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना– 800001
2. ईमेल से : पता– rashtriyakayakalp@gmail.com
3. टेलीफोनः 0612–2541276 (कार्यालय) , 0612–2541885 (आवास)
4. मोबाइल : 09431815755
5. वेबसाइट : www.fcsgi.org इस वेबसाइट पर आप भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच, जिसका मुखपत्र राष्ट्रीय कायाकल्प है , के बारे में पूरी जानकारी हासिल कर सकते हैं।

(नोट : डाक अथवा ईमेल से प्राप्त आपके पत्रों को पूर्ण / संक्षिप्त / संशोधित रूप में हम अपनी सुविधा के अनुसार राष्ट्रीय कायाकल्प के आने वाले अंक में यथा आवश्यक अपनी टिप्पणी के साथ प्रकाशित करेंगे।)

भारत का संसदीय लोकतंत्र - लोकतंत्र से कितना दूर?

हमारे संविधान में कहीं भी राजनीतिक दल की कोई चर्चा नहीं है। गणतंत्र भारत के प्रारंभिक वर्षों या दशकों तक हर राजनीतिक दल का कोई वैचारिक आधार था और तत्संबंधी कुछ सिद्धांत थे जो उनकी गतिविधियों और निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते थे। लेकिन जैसे जैसे सत्ता का स्वरुप बदलता गया, यह जन सेवा का माध्यम न होकर लूट का माध्यम बनती गई, इसका स्वरुप सेवात्मक न हो कर शोषणात्मक या लूटतंत्रात्मक होती गयी, यह औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के अपने असली स्वरुप में आती गई और हमारी राजनीति पूर्ण रुप से सत्ता केन्द्रित होती गई, सत्ता हासिल करना या सत्ता में बने रहना इनका एक मात्र उद्देश्य रह गया।

हम और विशेषतया हमारे नेता डंके की चोट पर हर स्तरों और विभिन्न मंचों से– जन सभाओं में, चुनावों के समय, वैश्विक मंचों से और विभिन्न उद्देश्यों के लिए गर्व के साथ उद्घोषणा करते रहते हैं कि भारत एक लोकतंत्र है और विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। इस उद्घोषणा के आधार स्वरुप या प्रमाण स्वरुप, व्यक्त या अव्यक्त रुप से, ऐसी धारणा है कि यहाँ सरकार गठन के लिए नियमित और निष्पक्ष रुप से चुनाव कराये जाते हैं। इसके लिए भारत में देश के सभी बालिग नागरिक बिना किसी धर्म, जाति, शैक्षणिक योग्यता, लिंग, आर्थिक स्थिति, इत्यादि के बंधन के अपने निर्धारित चुनाव क्षेत्र से राज्य की विधान सभा या देश की लोकसभा के लिए पाँच वर्षों के लिए अपना एक प्रतिनिधि चुन सकता है। इससे इतर, देश या राज्य के स्तर पर न सरकार गठन में उसकी कोई भूमिका है, न सरकार के कार्यकलापों पर कोई लोकतांत्रिक नियंत्रण है और न ही उसकी निर्णय प्रक्रिया में किसी तरह की कोई भागीदारी है। पाँच वर्षों तक इन बातों में वह मूक दर्शक है। अभी की शासन व्यवस्था में देश में सिर्फ दो ही स्तरों पर सरकार है, केन्द्र के स्तर पर और राज्यों के स्तर पर। अन्य स्तरों पर इन्हीं सरकारों के अधीन प्रशासनिक व्यवस्था है। ग्राम्य या नगरीय स्तरों पर जो भी व्यवस्था है वह सरकार नहीं है। तथाकथित पंचायती राज कोई स्वायत्त सरकार नहीं है। सम्बंधित राज्य सरकारों के अधीन उस ग्राम से सम्बंधित कुछ निर्धारित विषयों में राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त वित्तीय संसाधनों के अन्तर्गत योजनाएं जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा निष्पादित कराना है, जिसके लिए उसे राज्य सरकार के प्रति उत्तरदायी रहना है। इसलिए पंचायती राज हमारे देश की शासन व्यवस्था का ही अभिन्न अंग है। यदि हमारी शासन व्यवस्था मूलतः औपनिवेशिक शासन व्यवस्था है जो शोषणात्मक और लूट–तंत्रात्मक है, पंचायती राज भी इसी लूटतंत्र का ग्रामीण विस्तार है।

इन सारी बातों में यदि किसी की निर्णायक भूमिका है तो वह है राजनीतिक दल जिसके गठन, कार्य–कलाप और निर्णय प्रक्रिया में जनता संदर्भहीन है। इन दलों के लिए कोई संवैधानिक बाध्यता या कोई दिशा निर्देश नहीं है। यहाँ तक कि हमारे संविधान में कहीं भी राजनीतिक दल की कोई चर्चा नहीं है। गणतंत्र भारत के प्रारंभिक वर्षों या दशकों तक हर राजनीतिक दल का कोई वैचारिक आधार था और तत्संबंधी कुछ सिद्धांत थे जो उनकी गतिविधियों और निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते थे। लेकिन जैसे जैसे सत्ता का स्वरुप बदलता गया, यह जन सेवा का माध्यम न होकर लूट का माध्यम बनती गई, इसका स्वरुप सेवात्मक न हो कर शोषणात्मक या लूटतंत्रात्मक होती गयी, यह औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के अपने असली स्वरुप में आती गई और हमारी राजनीति पूर्ण रुप से सत्ता केन्द्रित होती गई, सत्ता हासिल करना या सत्ता में बने रहना इनका एक मात्र उद्देश्य रह गया। इनके विचार और सिद्धांत, यदि रहे भी हों, तो इस उद्देश्य के सामने अर्थहीन हा गए हैं। सत्ता के अपने एकमात्र उद्देश्य

को हासिल करने के लिए साधारण नैतिकता भी इनके कहीं आड़े नहीं आती। सरकार गठन में इस तरह के राजनीतिक दलों की ही दमदार भूमिका है। चुनाव के लिए किसी भी राजनीतिक दल का कौन प्रत्याशी होगा, चुनाव के बाद विजयी प्रत्याशी सरकार गठन में कैसी भूमिका निभाते हैं या अपने कार्य–काल में अपने विधायी कर्त्तव्यों का किस तरह से पालन करते हैं इनमें जिस जनता का वे प्रतिनिधित्व करते हैं वह सिर्फ मूकदर्शक है, इनमें उसकी कहीं कोई भूमिका नहीं है। इन सब में उनके दल का फरमान चलता है, एक ऐसी इकाई का जिसकी न कोई संवैधानिक मान्यता या बाध्यता है, न ही उनमें अपना कोई लोकतंत्र है। यह एक लूट–तंत्र पर काबिज होने के लिए रणनीति तैयार करने और मर्यादाओं की बिना परवाह किए कार्यान्वित करने के लिए एक राजनीतिक गिरोह है। यदि जनता अपने दैनिक जीवन से सम्बंधित किसी समस्या से पीड़ित है, जैसे अपने बच्चों की स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य या विधि व्यवस्था से तो जनता आज भी वैसी ही निस्सहाय है, जितना औपनिवेशिक शासन काल में थी। यह संसदीय लोकतंत्र की विडम्बना है कि हमारे संविधान के अनुसार जिस जनता में प्रभुसत्ता निवास करती है, जो सत्ता का मूल श्रोत है, वह वास्तव में इतना अशक्त व निस्सहाय है। वह सत्ताधारियों के लिए मात्र शक्ति विहीन वोट बैंक है, जिसे प्राप्त करने के लिए झूठे वादों, लोक लुभावन नीतियों, विरोधी दलों की खामियों या करतूतों को उछाल कर या समाज को बाँटने वाली तिकड़मों का सहारा लिया जाता है। अब तो जनता को लुभाने के लिए और किसी राजनीतिक दल या उसके उद्घोषित प्रमुख नेता की जनता को सम्मोहित करने वाली छवि निखारने के लिए मार्केटिंग जगत में प्रचलित आधुनिक ज्ञान और तकनीकी अपनाई जाती है और इसके लिए हाइ प्रोफाइल विशेषज्ञों की भी सेवा औपचारिक ढंग से ली जाने लगी है। इस तरह हम देखते हैं कि भारत के संसदीय लोकतंत्र में किसी भी स्तर की सरकार में शासन के निर्णय कर्त्ताओं के चुनाव में जनता की इतनी अप्रत्यक्ष भागीदारी है कि वह व्यावहारिक रुप से महत्त्वहीन है। हम लोकतंत्र की मूल अवधारणा, ''जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए सरकार'' से कोसों दूर हैं। केन्द्र के स्तर पर राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री या अन्य मंत्रियों के चयन में, या राज्य स्तर पर राज्यपाल, मुख्य मंत्री और अन्य मंत्रियों के चयन में जनता नितान्त हाशिए पर है। ग्राम्य स्तर या नगर स्तर पर तो जब सरकार ही नहीं है तो पंचायती राज का झुनझुना बजा कर सिर्फ लोकतन्त्र का कोलाहल ही पैदा किया जा सकता है, उससे लोकतंत्र का कोई संगीत नहीं निकल सकता। लोकतंत्र में जो प्रभुत्व सम्पन्न लोक– शक्ति हमारे जीवन को संचालित करती है, संसदीय लोकतंत्र ने उसे हमारी शासन व्यवस्था के कैदखाने में डाल रखा है, जिसकी चाभी हमारे मंत्रियों और लोकसेवकों को सौंपी गयी है, जैसे राजा को उसके सिपाहियों ने कैद कर रखा है।

हमारे संसदीय लोकतंत्र की विकृतियों और विरोधाभासों को समझने के लिए एक वास्तव में लोकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था से तुलना करना हमारी आँख खोलने वाला साबित होगा। इसके लिए विश्व के सबसे पुराने लोक तन्त्र, अमेरिका (संयुक्त राज्य अमेरिका) की शासन व्यवस्था को समझें जो आज भी उसी जीवन्तता से चल रही है जिस जीवन्तता से अमेरिका ने दो सौ से अधिक वर्षों पूर्व एक औपनिवेशिक शासन को जड़ से उखाड़ कर एक लोक तांत्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना की और उसी के बल पर आज वह विश्व का सबसे सम्पन्न, मजबूत, ज्ञान–विज्ञान–टेक्नोलॉजी में अग्रणी और सबसे जयादा सुशासित देश बना हुआ है, जिससे आकर्षित हो कर विश्व के उन्नत देशों की प्रतिभाएं भी वहाँ आकर बसने के लिए और इसके विकास और समुन्नति में अपना योगदान देने के लिए इच्छुक रहती हैं। वहाँ की शासन व्यवस्था में हर स्तर की सरकारों में निर्णय कर्त्ता सम्बंधित जनता से या तो सीधे निर्वाचित हैं या उसके निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के तहत उनकी जाँच पड़ताल की जाती है जिसे देश की जनता के सामने टेलीविजन पर प्रसारित किया जाता है। उदाहरण के लिए अमेरिका का शासनाध्यक्ष राष्ट्रपति अमेरिका की जनता द्वारा राज्यों के आधार पर सीधे निर्वाचित होता है और अमेरिका के अन्य मन्त्रिगण जो वहाँ विभाग के सेक्रेटरी कहे जाते हैं, राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होते हैं और जनता द्वारा राज्यों के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की सभा, 'सीनेट' द्वारा जाँच पड़ताल के बाद सम्पुष्ट किए जाते हैं। सत्ता वहाँ इतनी विकेन्द्रित है कि 'सरकार आपके द्वार' को चरितार्थ करती है। वहाँ के हर गाँव या शहर की अपनी सरकार है जो उस गाँव या शहर की जनता द्वारा निर्वाचित है और जो संविधान द्वारा निर्धारित विषयों और क्षेत्रों में उतना ही स्वायत्त है जितना राज्य या केन्द्र सरकारें अपने अपने निर्धारित विषयों और क्षेत्रों में हैं। अपने दायित्वों के निर्वहन के लिए संविधान द्वारा निर्धारित उसे पर्याप्त वित्तीय संसाधन और प्रशासनकि अधिकार प्राप्त हैं। वह किसी भी तरह अपने राज्य या केन्द्र की सरकार का मुँहताज नहीं है। वहाँ सत्ता के विकेन्द्रीकरण की यह स्थिति है कि जनता के जीवन से जुड़े हर महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को अपने दायित्वों को बखूबी निर्वहन करने के उद्देश्य से सरकार की स्वायत्तता प्रदान की गयी है। स्कूली शिक्षा, जो देश के भविष्य का आधार सुदृढ़ करती है, अपने प्रबंधन के लिए स्वायत्त है। एक निर्धारित सीमा क्षेत्र, जिसे स्कूल डिस्ट्रिक्ट कहा जाता है, के प्राइमरी, मिडिल और हाई स्कूल के प्रबंधन के लिए उस क्षेत्र की जनता स्कूल बोर्ड के सदस्यों को निर्वाचित करती है जो उस स्कूल डिस्ट्रिक्ट में

आने वाले स्कूलों के पूर्ण प्रबंधन के लिए उतना ही स्वायत्त है जितना और सरकारें, ग्राम सरकार, राज्य सरकार या केन्द्र सरकार अपने क्षेत्रों और विषयों में हैं। वास्तव में स्कूल बोर्ड सरकार की परिभाषा के अनुसार एक सरकार ही है। उसे अपना दायित्व निभाने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन और प्रशासनिक अधिकार है। अमेरिका के 90% से ज्यादा बच्चे इसी तरह के स्कूलों में अपनी स्कूली शिक्षा निःशुल्क प्राप्त करते हैं जो आगे चलकर अपने देश के चहुँमुखी विकास में अपना उत्कृष्ट योगदान करते हैं। शिक्षा के व्यवसायी–करण से अमेरिका कोसों दूर है। सिर्फ़ शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं, अन्य क्षेत्रों में भी, जो सामाजिक और सामुदायिक जीवन को समृद्ध और समुन्नत करते हैं, उनके प्रबंधन के लिए ऐसी ही स्वायत्त सांगठनिक इकाइयां कार्यरत हैं जो सरकार की परिभाषा के अनुसार अपने सीमित क्षेत्र में सरकार ही हैं। हर दस साल पर होने वाले एक सरकारी सेंसस के अनुसार अमेरिका में आज 96,000 से ज्यादा सरकारें कार्यरत हैं। इसके विपरीत, भारत में आज 31 सरकारें ही कार्यरत हैं, एक केन्द्र सरकार और 30 राज्य सरकारें हैं। भारत की कोई अन्य सांगठनिक इकाई सरकार की श्रेणी में नहीं आती। अपने देश की स्थिति या दुःस्थिति को समझने के लिए यह तुलनात्मक अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। जहाँ अमेरिका के 35 करोड़ जनता के राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, सामुदायिक और जीवन के अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों की समस्याओं के निराकरण और उन्हें समुन्नत बनाने के लिए 96000 से ज्यादा सरकारें कार्यरत हैं, वहाँ भारत की 125 करोड़ जनता के लिए सिर्फ 31 सरकारें ही काम कर रही हैं। अमेरिका में सत्ता के इस हद तक विकेन्द्रीकरण का ही फल है कि वहाँ के शासन के हर स्तर पर और जन जीवन के हर क्षेत्र में लोकशक्ति जीवंत और जागरुक है। भ्रष्टाचार नगण्य और अपवाद स्वरुप है। भारत के ढ़ाई गुणा जयादा विस्तार वाले देश में हर जगह सुव्यवस्था है। भारत के एक औसत जिले में जितनी आपराधिक घटनाएं, यथा हत्या, रेप, लूट, डकैती, या शासन व्यवस्था की कमियों और खामियों के कारण जितनी दुर्घटनाएं या मौतें होती हैं, यथा सड़क दुर्घटना, डूबने से मौतें इत्यादि पूरे अमेरिका में उसका अनुमानतः 10% भी घटित हों तो वह राष्ट्रव्यापी समाचार बन जाता है। पूरे अमेरिका में इस तरह का सुशासन कायम रखने के लिए किसी सुशासन बाबू नेता की जरुरत नहीं। शासन व्यवस्था ही ऐसी है कि सुशासन उसका अनिवार्य प्रतिफल है।

इन दोनों तथाकथित लोकतांत्रिक देशों की तुलनात्मक स्थितियों का यदि विश्लेषण किया जाय तो कारण प्रकाश की तरह स्पष्ट हो जायेगा। अमेरिका की शासन व्यवस्था वैचारिक, सैद्धांतिक और व्यावहारिक रुपों में भारत की उपर से नीचे तक की शासन व्यवस्था से एकदम भिन्न है। जहाँ अमेरिका में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था खत्म कर एक सेवात्मक शासन व्यवस्था स्थापित की गयी, भारत में शोषणात्मक और लूटतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की ही परम्परा चल रही है। जहाँ अमेरिका में गाँवों और शहरों की बुनियादी सुविधाओं यथा पेय जल व्यवस्था, स्कूली शिक्षा या विधि व्यवस्था शहरों की बुनियादी सुविधाओं से कम नहीं, भारत के गाँवों में इन बुनियादी सुविधाओं की स्थिति शहरों के मुकाबले दयनीय है। जहाँ अमेरिका में एक लोकतन्त्र की शासन व्यवस्था है, भारत में अभी भी एक औपनिवेशिक देश की शासन व्यवस्था है जिसके ऊपर से संसदीय लोकतन्त्र की एक भ्रामक चादर बिछी हुई है। यह स्थिति देश के लिए ज्यादा खतरनाक और हानिकारक है, जैसे कि एक रुग्ण व्यक्ति को स्वस्थ होने का भ्रम हो जाय। असल में आज देश में दो दो भ्रमों को नासमझी से या निहित स्वार्थवश पाला पोसा जा रहा है, हर मंच से उद्घोषित किया जाता है। एक यह कि भारत एक स्वतंत्र देश है। यदि हम महात्मा गाँधी के नेतृत्व में संचालित भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य इस देश को गुलामी की शासन व्यवस्था से मुक्त करना था। राजनीतिक स्वतंत्रता, जो हमें 15 अगस्त 1947 को मिली, वह स्वतंत्रता के उस लक्ष्य को पाने का सिर्फ एक पड़ाव था। उसका रास्ता था अपना संविधान बना कर उसमें औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की जगह एक वास्तव में लोकतांत्रिक देश की शासन व्यवस्था को प्रतिष्ठित करना। लेकिन निवर्तमान ब्रिटिश सरकार की चाल, भारत के वैसे वर्गों की मिली भगत, जिनका स्वतंत्र भारत में भी औपनिवेशिक शासन व्यवस्था कायम रखने में ही निहित स्वार्थ था और महात्मा गाँधी के शीर्ष अनुयायियों में उनकी दूर दृष्टि में अपूर्ण आस्था के फलस्वरुप हमारे संवधिान में मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना ली गई जो औपनिवेशिक भारत में कार्यरत थी। इस शासन की वीभत्सता को ढँकने के लिए इसके उपर से तथाकथित संसदीय लोकतंत्र की चादर ओढ़ा दी गयी। 'हिंद स्वराज' में महात्मा गाँधी ने ब्रिटेन के संसदीय लोकतंत्र की तीव्र भर्त्सना की थी। इस तरह हमारे संविधान में मूलतः औपनिवेशिक शासन व्यवस्था अपना कर न सिर्फ स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी के प्रति विश्वासघात किया गया, लाखों स्वतंत्रता सेनानियों को ठगा गया, करोड़ों भारतीयों की अपेक्षाओं पर पानी फेर दिया गया, बल्कि हमारे स्वतंत्रता संग्राम को ही नकार दिया गया। भारत की चिरआकांक्षित स्वतंत्रता आसमान से गिर कर खजूर पर लटक गयी। हमें इसे खजूर से उतार कर जमीन पर लाना है। भले ही इसके लिए जो भी भगीरथ प्रयास करना पड़े भारत माता को औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की बेड़ियों से मुक्त कर भारत की सरजमीं पर स्वतंत्रता और लोकतन्त्रता की गंगा का अवतरण कराना है, जिससे भारत वासियों को त्राण मिल सके।

◆

अब तक बिहार की बाढ़ की समस्या का स्थायी निदान क्यों नहीं?

इस शासन व्यवस्था में जनता और विज्ञान की कोई अहमियत नहीं

– टी. प्रसाद

कोसी की इस विभीषिका को 1945 में स्वयं देखकर ब्रिटिश भारत के तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड वावेल ने भारत सरकार के केन्द्रीय जल एवं जल परिवहन आयोग को आदेश दिया कि कोसी की बार–बार आनेवाली विभीषिका के स्थायी समाधान के लिए उपयुक्त योजना बनायी जाय। देश की स्वतंत्रता के बाद 1950ई० में इस आयोग ने 'कोसी हाई डैम' की योजना तैयार की जिसमें नेपाल सरकार की भी सहमति थी। देश की स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में कई समस्याओं से घिरी भारत सरकार की कई मजबूरियों और इस योजना के प्रति बिहार सरकार की आवश्यक गंभीरता और तत्परता के अभाव के फलस्वरुप यह योजना ठंडे बस्ते में डाल दी गयी।

उत्तर बिहार की नदियों में सदियों से वर्षा ऋतु में बाढ़ आती रही है। कुछ दिनों के बाद जब बाढ़ लौटती थी तो जहाँ तक बाढ़ फैलती थी उन खेतों में उपजाऊ गाद और नमी छोड़ जाती थी। यह गाद और नमी उत्तर बिहार की उपजाऊ कृषि का कारण थी। लेकिन कोसी नदी, जो उत्तर बिहार की नदियों में सबसे बड़ी है, की बात थोड़ी भिन्न थी। इस में बाढ़ के समय नदी का बहाव सबसे ज्यादा रहता था, ज्यादा क्षेत्र में फैलता था और लौटने पर खेतों में रेतीली गाद छोड़ जाती थी जो उपजाऊ कृषि के लिए हानिकारक थी। दूसरा, कोसी नदी की मुख्य धारा भी कुछ सालों में बदलती रहती थी। इन सब बातों से कोसी बिहार का अभिशाप बनी हुई थी।

कोसी की इस विभीषिका को 1945 में स्वयं देखकर ब्रिटिश भारत के तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड वावेल ने भारत सरकार के केन्द्रीय जल एवं जल परिवहन आयोग को आदेश दिया कि कोसी की बार–बार आनेवाली विभीषिका के स्थायी समाधान के लिए उपयुक्त योजना बनायी जाय। देश की स्वतंत्रता के बाद 1950ई० में इस आयोग ने 'कोसी हाई डैम' की योजना तैयार की जिसमें नेपाल सरकार की भी सहमति थी। देश की स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में कई समस्याओं से घिरी भारत सरकार की कई मजबूरियों और इस योजना के प्रति बिहार सरकार की आवश्यक गंभीरता और तत्परता के अभाव के फलस्वरुप यह योजना ठंडे बस्ते में डाल दी गयी। 1955 ई० में फिर हुई कोसी की विभीषिका को तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरु स्वयं देखकर और इसके निदान के लिये बनाई गई 'कोसी हाई डैम' योजना को भारत सरकार द्वारा ठंडे बस्ते में डाल देने की बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपनी सरकार को आदेश दिया कि जब तक कोसी की बाढ़ की विभीषिका का डैम बना कर स्थायी निदान नहीं हो जाता, अंतरिम अवधि के लिए प्रभावित जनता को इस बाढ़ से बचाव और राहत देने के लिए उपयुक्त योजना बना कर उसका शीघ्र कार्यान्वयन किया जाय। इसी आदेश के अनुपालन में केन्द्रीय सरकार ने वर्त्तमान कोसी योजना बनाई। इस योजना के अंतर्गत भारतीय सीमा से 8 कि०मी० उत्तर नेपाल में एक बराज का निर्माण, उसके दोनों ओर बराज से लेकर प्रायः गंगा तक, जिसमें कोसी मिलती है, 125 कि०मी० तटबंधों का निर्माण तथा बराज के ऊपर से दोनों ओर नहरें निकाल कर तटबंधों के बाहर सिंचाई की सुविधा

प्रदान करना था। जहाँ तक कोसी योजना से बाढ़ से सुरक्षा, जो इसका प्रमुख उद्देश्य था, का प्रश्न है, एक तो यह अस्थाई सुरक्षा, हाई डैम द्वारा स्थाई सुरक्षा सुनिश्चित करने की अन्तरिम अवधि, प्रायः 25 वर्षों तक के लिए अभिकल्पित थी। इस अवधि में प्रत्येक वर्ष नदी का तल और नदी के दोनों ओर तटबंधों तक की जमीन की सतह उठती जायेगी, तटबंध स्वयं असुरक्षित होते जाएंगे और उनकी बाढ़ रोकने की क्षमता घटती जायेगी। फलस्वरुप तटबंधों के टूटने से होने वाली विभीषिका की संभावना बढ़ती जायेगी। पिछले कुछ दशकों से हमारा अनुभव भी ऐसा ही रहा है। फिर, बराज के नीचे और ऊपर तटबंधों के रख–रखाव में कोई कमी होती है या बराज को ठीक से अपना काम करते रहने के लिए जो सावधानियां बरतनी चाहिए उनकी अनदेखी करने पर जो विभीषिका होगी वह भीषण हो सकती है, जैसा 2008 में कुसहा में हुआ। कुसहा की त्रासदी से जितने लोग बेघर–बार और तबाह हुए और जितनी लम्बी अवधि तक तबाही झेलते रहे वह दुनिया की भीषणतम जल विपदाओं में एक है।

उत्तर बिहार की नदियों पर इतिहास में पहली बार बड़े स्तर पर कोसी के दोनों ओर तटबंधों का निर्माण हुआ। इससे पहले उत्तर बिहार की नदियों और उनमें प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु में आती बाढ़ों की प्रकृति के आलोक में उनपर तटबंध बनाना कभी भी उपयुक्त नहीं समझा गया था। लेकिन विशेष परिस्थिति में कोसी नदी पर जब तटबंधों का निर्माण किया गया तो हमारी भ्रष्टाचार–ग्रस्त शासन व्यवस्था में राजनेताओं, अभियंताओं, पदाधिकारियों और ठेकेदारों को पहली बार तटबंधों का आर्थिक पहलू बड़ा रुचिकर लगा। और फिर अन्य नदियों पर भी बाढ़ से बचाव के नाम पर 3000 किलोमीटर से ज्यादा तटबंधों का जाल बिछा दिया गया। फल यह हुआ कि पहले इन नदियों में जहाँ अल्पकालिक बाढ़ आती थी और खेतों में उपजाऊ गाद और नमी देते हुए चली जाती थी वहाँ बाढ़ के स्थान पर यदा–कदा तटबंधों के टूटने से बाढ़ की विभीषिका होने लगी और तटबंधों द्वारा नदियों के जल ग्रहण और निस्सरण प्रक्रिया बाधित होने से तटबंधों के बाहर जल जमाव बढ़ने लगा, प्रतिवर्ष उपजाऊ गाद और नमी से वंचित जमीन की उत्पादकता कुप्रभावित हुई और उनकी पूर्ति रासायनिक खाद और बोरिंग से की जाने लगी। इसके चलते खेती महँगी होने से कृषि लाभदायक नहीं रही और सीमांत किसानों को मजदूरी करने के लिए मजबूर होना पड़ा। खेती, जो उत्तर बिहार के अर्थतंत्र और समृद्धि का आधार थी, वह अलाभ–कारी हो गयी। बड़े पैमाने पर उत्तर बिहार से खेतिहर मजदूरों का पंजाब और हरियाणा की ओर पलायन और वहाँ परिवार से दूर रहकर अमानवीय जीवन जीने को अभिशप्त होना पड़ा।

इस तरह हम देखते हैं कि पिछले पचास वर्षों में उत्तर बिहार में बाढ़ से बचाव के नाम पर जो किया गया उससे बाढ़ को तो नहीं रोका जा सका, लेकिन सिर्फ बाढ़ से होनेवाले जल प्लावन को तटबंधों के अंदर सीमित करने का प्रयास किया गया। लेकिन इस प्रयास ने अनेकों कुप्रभावों को जन्म दिया। कई कारणों से मिट्टी से बने तटबंधों के नहीं टूटने की गारंटी कोई नहीं दे सकता। टूटने की स्थिति में जो स्थिति उत्पन्न होगी वह एक विभीषिका होगी और वह स्थितियों के अनुसार भयावह भी हो सकती है। चूँकि तटबंध निश्चित रुप से नदी के जल निस्सरण की प्राकृतिक प्रक्रिया को बाधित करता है, तटबंधों से सुरक्षित क्षेत्र में जल जमाव की समस्या उत्पन्न होगी। फिर कृषि योग्य सुरक्षित क्षेत्र सालों–साल गाद और नमी से वंचित हो जाता है और उसकी कृषि उत्पादकता कुप्रभावित होती है। इन तटबंधों के बनने के बाद के कई अध्ययन और रिपोर्ट इस बात की पुष्टि करते हैं।

यक्ष प्रश्न है कि आजादी के सत्तर सालों बाद भी हमलोग या हमारी सरकार उत्तर बिहार की नदियों में प्रायः हर साल आने वाली बाढ़ का उपयुक्त और स्थायी समाधान करने में क्यों अक्षम रही। और तो और, इस सम्बंध में जो हमलोगों ने किया उससे या तो जहाँ बाढ़ पहले समस्या नहीं थी, एक अल्प–कालिक प्राकृतिक प्रक्रिया थी, उसे हमने समस्या बना दिया, दीर्घकालिक कुप्रभावों को जन्म दे दिया और कई बार हमारे कृत्यों ने बाढ़ को विभीषिका और त्रासदी के रुप में प्रस्तुत किया। इसके अलावा, हमारे कृत्यों ने उत्तर बिहार को बाढ़ से होने वाले लाभों से भी वंचित कर दिया।

क्या बाढ़ एक ऐसी समस्या है जिसका समाधान ज्ञान, विज्ञान और इंजीनियरिंग में खोजा नहीं जा सका है? कदापि नहीं। विशेषतया उत्तर बिहार में आने वाली बाढ़ जो एक निर्दिष्ट मौसम में आती है और जिन प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा बाढ़ का सृजन होता है वे सम्बंधित ज्ञान–विज्ञान में अच्छी तरह ज्ञात हैं। आखिर, उत्तर बिहार की बाढ़ है क्या? बहुत सा पानी, बहुत सी गाद ओर बहुत सी ऊर्जा – जो तीनों मानव जीवन के लिए आवश्यक और लाभकारी हैं, लेकिन अनियंत्रित हो कर हमें नुकसान पहुँचाती है। बाढ़ उत्पन्न करने वाली प्रक्रियाओं में समुचित हस्तक्षेप कर हम न सिर्फ बाढ़ को बनने से रोककर बाढ़ का स्थायी निदान कर सकते हैं बल्कि बाढ़ के तीनों तत्त्वों– बहुत सा जल, उसमें मिश्रित बहुत सी गाद और अनियंत्रित ऊर्जा– को अपने विनाशकारी भूमिका से रुपांतरित कर हितकारी भूमिका में ला सकते हैं। इस रुपांतरण की इंजीनियरिंग अच्छी तरह ज्ञात और प्रतिष्ठित है। ऐसा करके हम सम्बद्ध क्षेत्र में आर्थिक क्रांति ला सकते हैं, गरीबी को हटाकार हम समृद्धि ला सकते हैं, बाढ़ को अभिशाप से वरदान में परिणत कर सकते हैं।

बाढ़ की भूमिका को विनाशकारी से हितकारी भूमिका में परिणत करने के

लिए हमें गहराई से विश्लेषण करना होगा। यह किसी व्यक्ति या राजनीतिक दल विशेष के चलते नहीं है। यह हमारी शासन व्यवस्था से जुड़ी है। यह शासन व्यवस्था तत्त्वतः वही है जो औपनिवेशिक भारत में थी। उसी व्यवस्था पर लोकतंत्र की एक भ्रामक चादर ओढ़ा दी गयी है। अन्दर वही औपनिवेशिक शासन व्यवस्था। यह शासन व्यवस्था सात समुंदर पार बसे एक छोटे से देश द्वारा एक विशाल और संस्कृति–समृद्ध देश का यहीं के लोगों के सहयोग से शोषण और यहाँ की जनता की नैतिकता का अधोपतन सुनिश्चित करने के लिए अभिकल्पित की गयी थी। इस शासन व्यवस्था में जनता और विज्ञान की कोई अहमियत नहीं। इस शासन व्यवस्था में राजनीति और राजनीतिक दल पूरी तरह सत्ता केन्द्रित है, लोक केन्द्रित नहीं। जनता सिर्फ वोट बैंक है, सरकार में न कोई उसकी भूमिका है, न कोई आवाज है। हर पाँच साल में एक बार अपने निर्धारित क्षेत्र से विधानसभा या लोकसभा के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों, जिनमें खुद लोकतंत्र नहीं है, द्वारा सत्ता–केन्द्रित गणित के हिसाब से खड़े किए गये प्रत्याशियों में किसी एक के लिए या 'किसी के लिए नहीं' अपना मत देने का अधिकार है। इसके अलावा सरकार में जनता गौण है, अधिकार विहीन हे। सरकार के गठन में उसकी कोई प्रभावी भूमिका नहीं है। उसके दैनिक जीवन से सम्बद्ध समस्याओं, यथा बच्चों की स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य, विधि–व्यवस्था, पेयजल इत्यादि के समुचित निराकरण में वह वास्तव में अधिकार विहीन और असहाय है। इस शासन व्यवस्था में लोकतंत्र नाम मात्र का ही है। और **जिस सरकार में लोकतंत्र नहीं है, वह लोगों की मूलभूत समस्याओं यथा गरीबी, कुपोषण, बदहाली, हर साल आनेवाली बाढ़ और सुखाड़ का स्थायी समाधान, और अन्य दीर्घकालिक समस्याओं के निराकरण में संवेदनशील और क्रियाशील नहीं हो सकती। ऐसी समस्याओं के समाधान के लिए**

लिए जल विज्ञान सिद्धांत के अनुसार बाढ़ को पूरी समग्रता में देखना होगा, न कि सिर्फ बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में ही देखकर इसका निदान ढूँढ़ना होगा। किसी नदी में आने वाली बाढ़ को समग्रता में देखने के लिए उस नदी के पूरे बेसिन को संज्ञान में लेना होगा क्योंकि विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा कारकों, यथा हाइड्रो–मिटियरोलॉजिकल, हाइड्रोलॉजिकल, टोपोग्राफिकल, जियोमौर्फोलॉजिकल, हाइड्रॉलिक इत्यादि द्वारा बाढ़ की उत्पत्ति और उसका बहाव बेसिन के ऊपरी भाग में होता है। इस तरह से नदी का बहाव बाढ़ बनकर उत्तर बिहार में जब पहुँचता है तो वह हानिकारक और विध्वंसकारी रूप धारण कर चुका रहता है। नदी के इसी रुप से बचाव के लिए तटबंध बनाए जाते हैं जिससे होने वाले लाभ और हानि की चर्चा पहली की गयी है। लेकिन यदि नदी के बेसिन के ऊपरी भाग में विभिन्न तकनीकी विधियों से हस्तक्षेप किया जाय तो एक तो बाढ़ बनेगी ही नहीं और दूसरा बाढ़ के विभिन्न अवयवों, यथा पानी, गाद और उर्जा को लाभकारी रुप में परिवर्त्तित कर नदी के बेसिन से सम्बद्ध दोनों क्षेत्रों, बिहार और नेपाल, को भरपूर रुप से लाभ पहुँचाया जा सकता है। बहुत मात्रा में पनबिजली, जो सबसे सस्ता, कभी न समाप्त होने वाला, पर्यावरण को कोई हानि पहुँचाने वाला नहीं और कोई खतरा पैदा करने वाला नहीं है, पैदा की जा सकती है? फिर सालों भर सिंचाई की भरपूर सुविधा प्रदान की जा सकती है जिससे नेपाल और बिहार की कृषि काफी समुन्नत हो सकती है, जल परिवहन जो भारी और ज्यादा मात्रा के सामानों, जैसे कोयला, खाद्यान्न, लकड़ी इत्यादि को ढोने का सबसे किफायती साधन है, का विकास संभव हो जायेगा। इसके अलावा, बिहार को सदा के लिए बाढ़ से मुक्ति मिल जायेगी। आपसी सहयोग से बिहार और नेपाल अपनी साझी नदियों और जल संसाधन के समुचित प्रबंधन से अपने–अपने क्षेत्रों में आर्थिक क्रांति ला सकते हैं और भारत ही नहीं, दुनिया के निर्धनतम क्षेत्रों में शुमार होने वाले नेपाल–बिहार क्षेत्र को दुनिया का एक समृद्ध और सम्पन्न क्षेत्र बना सकते हैं।

अहम प्रश्न है कि ऐसा अब तक क्यों नहीं हो सका है। इस स्पष्ट संभावना के बावजूद क्यों बिहार की जनता स्वतंत्र भारत के सत्तर सालों से बाढ़ की विभीषिका और त्रासदी झेलने को अभिशप्त रही है? यह प्रश्न इतना गंभीर है कि इस पर गहराई से सोचने की आवश्यकता है। सिर्फ यह बेतुकी बात कह देने से पल्ला नहीं झाड़ा जा सकता कि नेपाल इसमें सहयोग नहीं कर रहा है। नेपाल को बिहार से जितना नजदीकी ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रिश्ता है, उतना भारत के अन्य क्षेत्रों या राज्यों से नहीं है। इसके अलावा हमारा हाइड्रॉलिक रिश्ता भी उतना ही नजदीकी है। नेपाल की सभी नदियां अंततोगत्वा बिहार में ही आकर अपनी गंगा माँ से मिलती हैं। अहम बात है कि इन नदियों और उनसे सम्बद्ध जल संसाधन का समुचित प्रबंधन और विकास हम आपसी सहयोग से ही कर सकते हैं अन्यथा नहीं। इस में हमारा अन्योनाश्रय का सम्बंध है। आर्थिक, हाइड्रॉलिक और कई अन्य कारणों से हम बिना आपसी सहयोग के अपने साझा जल संसाधन का इष्टतम विकास नहीं कर सकते हैं और आर्थिक दृष्टि से इतने महत्त्वपूर्ण संसाधन से सम्पन्न रहकर भी अपनी जनता को गरीबी, बदहाली और त्रासदी झेलने को मजबूर करते रहेंगे। अगर देखा जाय तो बिहार और नेपाल का इन साझी नदियों के माध्यम से जितना अटूट और आर्थिक दृष्टि से जितना महत्त्वपूर्ण रिश्ता है, वह किसी और रिश्ते से नहीं।

इस परिप्रेक्ष्य में यदि हम बिहार सरकार के प्रयास को देखें तो हमें निराशा होगी। नेपाल का सहयोग सुनिश्चित करने के लिए बिहार सरकार इसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दा कहकर इसे भारत सरकार के पाले में डाल देने से इससे अपना पल्ला नहीं झाड़ सकती। इस सहयोग के अभाव में भारत के तीस राज्यों में सबसे ज्यादा त्रासदी बिहार की जनता झेलती है, यदि हम सहयोग के साथ अपनी साझी नदियों का प्रबंधन और विकास करें तो बिहार सबसे ज्यादा लाभुक राज्य होगा और बिहार का नेपाल के साथ सबसे ज्यादा नजदीकी भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और हाइड्रॉलिक रिश्ता है। फिर भारत सरकार कोई विदेशी सरकार तो है नहीं। बिहार की जनता और उसके चुने हुए प्रतिनिधियों की भी भारत सरकार में प्रभावी हिस्सेदारी है। भारत सरकार बिहार की जनता के जीवन से जुड़े अहम बातों में यदि उचित और संवेदनशील रवैया नहीं अपनाती है तो उसका राजनीतिक मूल्य हो सकता है। हर हालत में बिहार सरकार को तो अग्रणी और सक्रिय भूमिका निभानी ही होगी। 1950 में जो प्रथम बार भारत सरकार द्वारा 'कोसी हाई डैम' की योजना बनाई गई तो उस समय भी बिहार सरकार की सक्रियता के अभाव में भारत सरकार द्वारा उसे ठंडे बस्ते में डाल दिया गया था।

विचारणीय प्रश्न है कि बाढ़ के सम्बंध में क्यों बिहार सरकार अपनी अपेक्षित भूमिका नहीं निभा पाती है। क्यों बिहार सरकार कोसी पर बराज के ऊपर और नीचे बने तटबंधों को वैज्ञानिक ढंग से रखरखाव नहीं कर पाती और फलस्वरुप जनता को कोसी की विभीषिका और त्रासदी का जोखिम उठाने को मजबूर करती है? क्यों उत्तर बिहार की अन्य नदियों पर जल संसाधन विज्ञान की उपेक्षा कर उनपर तटबंधों का जाल बिछाकर इन नदियों की उपयोगी बाढ़ को बाढ़ की विभीषिका के रुप में परिणत कर दिया और उत्तर बिहार के सीमांत किसानों को मजदूर के रुप में पंजाब और हरियाणा की ओर पलायन करने के लिए मजबूर कर दिया?

इन सब प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने के

लोकतंत्र में जनता वाकई मालिक है?

— मधुरेश

वोट के लिए नोट बंटते हैं। चुनाव, नकली नोटों के कारोबार का सबसे बड़ा मौका होता है। शराब बंटती है। नोट लेकर, शराब पीकर और जाति–धर्म के बहकावे में आकर क्या ऐसी वोटिंग हो सकती है, जो वोट गिराने वाले को वास्तव में मालिक का दर्जा दे? वोटिंग से पहले या चुनाव के बाद जनता की मालिकाना ताकत और इस लायक उसकी प्रबुद्धता कहीं, कभी दिखती है? रहनुमाओं की टोली विसंगतियों का पहाड़ खड़ा कर देती है, और सीधे जनता से अपेक्षा करती है कि वह इसे दुरुस्त करे। नेता, अपने कारनामों को जनता के सिर खेल जाता है। गजब।

रतन राजपूत, पिछले लोकसभा चुनाव में मतदान की महत्ता बता प्रतिशत बढ़ाने वाले अभियान की ब्रांड एंबेसडर थीं। बिहार के कई क्षेत्रों में घूमने के बाद बोलीं – 'यहां अब भी दस रुपए में वोट बिकता है।' यह 21वीं सदी में लोकतंत्र की जन्मभूमि पर उस जनता की हैसियत या असलियत है, जो लोकतंत्र में मालिक कहलाती है। वह चुनाव साल भर पहले ही हुआ है। एक साल में ऐसा क्या हुआ या सामने दिख रहे विधानसभा चुनाव तक ऐसा क्या हो जाएगा कि जनता वाकई मालिक कहलाएगी?

बात रतन की या उनके सही, गलत होने की नहीं है। यह तो बस उदाहरण है। इस पर बहस की गुंजाइश भी नहीं। **चूंकि खुली सच्चाई है कि संसदीय प्रणाली में जनता की भूमिका वोट देने से जयादा की नहीं है? बेशक, जनता के वोट से सरकार बनती है और बस इसलिए वह मालिक कहलाती है। लेकिन सबसे बड़ा सच यही है कि ज्यादातार का वोट बाकायदा ले लिया जाता है। वोट लेने के तिकड़म हैं। तरीके हैं। तरह–तरह की लीला है।** वोट के लिए नोट बंटते हैं। चुनाव, नकली नोटों के कारोबार का सबसे बड़ा मौका होता है। शराब बंटती है। नोट लेकर, शराब पीकर और जाति–धर्म के बहकावे में आकर क्या ऐसी वोटिंग हो सकती है, जो वोट गिराने वाले को वास्तव में मालिक का दर्जा दे? वोटिंग से पहले या चुनाव के बाद जनता की मालिकाना ताकत और इस लायक उसकी प्रबुद्धता कहीं, कभी दिखती है? रहनुमाओं की टोली विसंगतियों का पहाड़ खड़ा कर देती है, और सीधे जनता से अपेक्षा करती है कि वह इसे दुरुस्त करे। नेता, अपने कारनामों को जनता के सिर खेल जाता है। गजब।

किसने कितने का किया निवेश?

अभी विधानपरिषद की 24 सीटों के चुनाव का दौर है। अगले हफ्ते सबकुछ हो जाएगा। इसमें वे लोग वोट देंगे, जो त्रि–स्तरीय स्थानीय निकायों के प्रतिनिधि हैं। ये जनता द्वारा चुने गए हैं। इनसे जनता से अधिक प्रबुद्धता की अपेक्षा तो की ही जानी चाहिए। मगर हो क्या रहा है? कोई भी पार्टी या नेता ईमानदारी से बताएगा कि इस चुनाव में जीत की आकांक्षा रखने वालों ने कितने करोड़ रुपयों का निवेश किया है? जो व्यवस्था जनता के चुने प्रतिनिधियों का वोट खरीद सकती है, वहां भला बेचारी सी जनता की क्या बिसात?

नेताओं के निर्णय में जनता कहां?

आजकल जो कुछ भी हो रहा है, जनता से पूछकर हो रहा है? दल बदलने, दोस्ती–दुश्मनी करने, गठबंधन बनाने आदि के बारे में किन सेवकों यानी नेता ने अपने मालिक (जनता) से पूछा? उसकी अनुमति ली गई? राजनीति का अपराधीकरण, क्या जनता की सहमति से है? उम्मीदवारी तय करने में जनता की भूमिका होती है? अगर वह सही में मालिक है, तो होनी चाहिए कि नहीं? अरे यहां तो मालिक को उसकी जाति की बिसात पर उसके सेवक (नेता) ही नचा रहे हैं। मालिक, जाति के चार्जर से बड़े आराम से चार्ज हो जाते हैं। जहां जाति नहीं चलती, वहां कौम या धर्म मजे में चल जाता है। नेताओं की लड़ाई का गाली चरण खुलेआम है। बेमतलब के मसले मुद्दा बनाये जा रहे हैं। जनता, सब कुछ टुकुर–टुकुर देख रही है। मालिक की यही हैसियत होती है?

अब तो मालिक अपने सेवकों से सवाल भी नहीं पूछते। कहीं–कहीं चुनाव बहिष्कार के नारे सुनने को मिलते हैं लेकिन इसकी गूंज में इतनी ताकत नहीं होती, जो नेताओं को जनता से मालिक जैसा व्यवहार करने को बाध्य कर दे। लोग नेताओं को खूब कोसते हैं और अंततः उनको वोट भी देते हैं। जनता को कोई भी, कुछ भी अपने हिसाब से समझा देता है। वह समझ भी जाती है।

खुली सच्चाई है कि संसदीय प्रणाली में जनता की भूमिका वोट देने से ज्यादा की नहीं है? बेशक, जनता के वोट से सरकार बनती है और बस इसलिए वह मालिक कहलाती है। लेकिन सबसे बड़ा सच यही है कि ज्यादातार का वोट बाकायदा ले लिया जाता है। वोट लेने के तिकड़म हैं। तरीके हैं। तरह–तरह की लीला है। वोट के लिए नोट बंटते हैं। चुनाव, नकली नोटों के कारोबार का सबसे बड़ा मौका होता है। शराब बंटती है। नोट लेकर, शराब पीकर और जाति–धर्म के बहकावे में आकर क्या ऐसी वोटिंग हो सकती है, जो वोट गिराने वाले को वास्तव में मालिक का दर्जा दे?

चौहत्तर के बाद जनता, नेताओं के बुलावे पर सड़क पर नहीं आई। यह जनता का नेताओं पर से भरोसा उठने का घोषित मौका रहा। दरअसल,चौहत्तर को अपना चेहरा बदलने का मौका मानने वाला बिहार घूम–फिरकर फिर वहीं पहुंच गया। चौहत्तर के बाद से अब की बिहार की राजनीतिक यात्रा, कुर्सी के खेल से बहुत अधिक की नहीं है।

अब लोग मरने–मारने को उतारू नहीं

आजादी के करीब सात दशक बाद भी ऐसे मालिकों की बडी तादाद है, जो बेखौफ वोट गिराने की हिम्मत नहीं रखते। पिछले लोकसभा चुनाव में ऐसे 18 हजार टोले पहचाने गए थे, जहां के लोगों के लिए सिस्टम ने कमजोर वर्ग शब्द का इस्तेमाल किया था।

कौन जिम्मेदार है, इस पर बहस करते रहिए। कहते रहिए कि इसकी सबसे बड़ी वजह जागरुकता का अभाव है। जातीयता की पैदाइश यहीं से होती है। आखिर जनता अपनी जाति के अपराधी को क्यों माफ कर देती है? अगर विकास का पैमाना, लोगों की सोच या अपेक्षा वृद्धावस्था पेंशन, नाली, पानी जैसे बुनियादी मसलों से आगे नहीं बढ़ी, जनता प्रशिक्षित न हुई, तो कौन कसूरवार है? एक बात जरूर हुई है। अब नेताओं के बहकावे पर लोग पहले की तरह एक–दूसरे को मारने पर उतारू नहीं होते हैं।

(यह आलेख 3 जुलाई 2015 के 'दैनिक भास्कर' के पटना से प्रकाशित अंक से साभार लिया गया है) ◆

भारत के हर नागरिक से अपील

- ❖ भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन के अभियान को आप समझें
- ❖ इसके लिए आप राष्ट्रीय कायाकल्प, भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन मंच के वेबसाइट और ब्लॉग का इस्तेमाल कर सकते हैं।
- ❖ संस्था का सदस्य बनकर इसके विभिन्न कार्यों में सहयोग करें।
- ❖ आर्थिक सहयोग कर राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में सहयोग करें।

सम्पर्क करें :

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच

173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001

टेलीफोनः 0612–2541276, मोबाईल : 9431815755, ईमेल drt.prasad@gmail.com

भारत में पंचायती राज - कैसा राज?

निवर्तमान ब्रिटिश सरकार ने औपनिवेशिक भारत में ही अपनी योजना के तहत स्वतंत्र भारत के लिए एक संविधान सभा का गठन ऐसे विकृत ढंग से कर दिया कि एक ओर यह सभा सम्पूर्ण भारतीयों का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी और दूसरी ओर उसमें ऐसे ही सदस्यों की बहुतायत हो गयी जो औपनिवेशिक शासन व्यवस्था को ही स्वतंत्र भारत में कायम रखने के हिमायती थी। देश के विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों से मर्माहत और कांग्रेस के उनके शीर्ष अनुयायियों द्वारा भारत की अंतरिम सरकार में पदभार संभालने के बाद महात्मा गाँधी सरकार के निर्णयों में और विशेषतया संविधान निर्माण की प्रक्रिया में सर्वथा संदर्भहीन कर दिए गए थे।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में इस संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी ने बार–बार और अनेक अवसरों पर कहा था और जोर देकर कहा था कि इस स्वतंत्रता का लक्ष्य भारत को एक शोषणकारी, अनैतिक और अनैतिकता–परक शासन व्यवस्था से, जिसने एक सम्पन्न देश की जनता को दरिद्र और बदहाल कर दिया है, मुक्त करना है। इस संग्राम का यह उद्देश्य कभी नहीं है कि अंग्रेजों को भगाकर उनकी जगह उसी व्यवस्था में भारतीय विराजमान हो जाएं। महात्मा गाँधी के अहिंसक असहयोग के अमोघ अस्त्र से 15 अगस्त 1947 को जब भारत राजनीतिक रूप से ब्रिटेन से आजाद हुआ तब वह उस औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से मुक्त नहीं हुआ था, स्वतंत्र भारत भी उसी शासन व्यवस्था से जकड़ी हुई थी। इससे मुक्त होने का मार्ग था अपना संविधान बना कर उसमें एक स्वतंत्र देश की लोकतांत्रिक सरकार प्रतिष्ठित करना। लेकिन निवर्तमान ब्रिटिश सरकार की चाल, भारत के वैसे वर्ग जो औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के लाभुक थे और स्वतंत्र भारत में भी वैसी ही व्यवस्था कायम रखने में जिनका निहित स्वार्थ था यथा उच्च सरकारी पदाधिकारी वर्ग, बड़े उद्योगपति और व्यापारिक प्रतिष्ठान तथा महात्मा गाँधी के शीर्ष अनुयायियों में भी उनकी दूरदृष्टि में अपूर्ण आस्था और औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के प्रति उनका लगाव और मोह के चलते हमने अपने संविधान मे भी तत्त्वतः वही औपनिवेशक शासन व्यवस्था अपना कर हमारे अनूठे स्वतंत्रता संग्राम को ही नकार दिया। निवर्तमान ब्रिटिश सरकार ने औपनिवेशिक भारत में ही अपनी येाजना के तहत स्वतंत्र भारत के लिए एक संविधान सभा का गठन ऐसे विकृत ढंग से कर दिया कि एक ओर यह सभा सम्पूर्ण भारतीयों का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी और दूसरी ओर उसमें ऐसे ही सदस्यों की बहुतायत हो गयी जो औपनिवेशिक शासन व्यवस्था को ही स्वतंत्र भारत में कायम रखने के हिमायती थी। देश के विभाजन और साम्प्रदायिक दंगों से मर्माहत और कांग्रेस के उनके शीर्ष अनुयायियों द्वारा भारत की अंतरिम सरकार में पदभार संभालने के बाद महात्मा गाँधी सरकार के निर्णयों में और विशेषतया संविधान निर्माण की प्रक्रिया में सर्वथा संदर्भहीन कर दिए गए थे। इसलिए स्वतंत्र भारत के लिए कैसी शासन व्यवस्था हो और कैसा संविधान हो, इन बातों में उनसे राय विचार तो दूर, उनके सर्वविदित

बहुधा लोग महात्मा गाँधी के इस विचार को पुरातन पंथी और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इसे रुढ़िवादी, अव्यावहारिक और प्रतिगामी समझते हैं। लेकिन आधुनिक युग में दुनिया के सबसे पुराने लोकतंत्र अमेरिका (संयुक्त राज्य अमेरिका) में ऐसी ही व्यवस्था वहाँ के गाँवों और शहरों की है। प्रत्येक गाँव, जो भी उसकी आबादी हो, में अपनी सरकार है जो वहाँ के निवासियों द्वारा एक निर्धारित अवधि के लिए निर्वाचित होती है। वहाँ के निवासियों के जनजीवन से सम्बंधित सभी बातों यथा पेयजल की व्यवस्था, गाँव या शहर की प्लानिंग, सड़कें, विधि व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य, इत्यादि के प्रबंधन और समस्याओं के निराकरण के लिए सम्बंधित गाँव या शहर की सरकार स्वायत्त और सक्षम है। इसके लिए उसे पर्याप्त वित्तीय संसाधन और प्रशासनिक अधिकार संविधान द्वारा प्राप्त है। इसके लिए वह राज्य सरकार या संघीय सरकार पर आश्रित नहीं है। राज्य सरकार या संघीय सरकार उनके विषय क्षेत्र और कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इस तरह अमेरिका की शासन व्यवस्था में सत्ता पूरी तरह विकेन्द्रित है। 250 सालों से ऐसी ही विकेन्द्रित शासन व्यवस्था में यह देश सबसे सुशासित ही नही; सबसे प्रगतिशील भी रहा है और आज प्रायः हर क्षेत्र में – शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, विज्ञान, उद्योग इत्यादि में दुनिया का अग्रणी देश है।

विचारों और दृढ़ धारणाओं की भी घोर अवहेलना कर दी गयी। महात्मा गाँधी के प्रेरणादयी नेतृत्व में जिस अनूठे स्वतंत्रता संग्राम को सफलतापूर्वक संचालित किया गया उसका लक्ष्य ही था एक गुलाम देश को गुलामी की व्यवस्था से मुक्ति दिलाना, एक शोषणात्मक और अनैतिकतापरक शासन व्यवस्था से मुक्त करके उसकी जगह एक ऐसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था स्थापित करना जिसमें लोकसत्ता मुखर हो, सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर न हो कर नीचे से ऊपर की ओर जाये। **व्यावहारिक रुप में सत्ता का पूर्ण विकेन्द्रीकरण हो, सत्ता के चेन की हर कड़ी मजबूत हो, सत्ता श्रृखंला के आधारस्वरूप हर गाँव में एक स्वायत्त और मजबूत सरकार हो।** महात्मा गाँधी ने इसे 'ग्राम गणतंत्र' की संज्ञा दी थी और यही उनके विचार में भारत की प्राचीन परम्परागत पंचायती राज की व्यवस्था थी।

बहुधा लोग महात्मा गाँधी के इस विचार को पुरातन पंथी और आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इसे रुढ़िवादी, अव्यावहारिक और प्रतिगामी समझते हैं। लेकिन आधुनिक युग में दुनिया के सबसे पुराने लोकतंत्र अमेरिका (संयुक्त राज्य अमेरिका) में ऐसी ही व्यवस्था वहाँ के गाँवों और शहरों की है। प्रत्येक गाँव, जो भी उसकी आबादी हो, में अपनी सरकार है जो वहाँ के निवासियों द्वारा एक निर्धारित अवधि के लिए निर्वाचित होती है। वहाँ के निवासियों के जनजीवन से सम्बंधित सभी बातों यथा पेयजल की व्यवस्था, गाँव या शहर की प्लानिंग, सड़कें, विधि व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य, इत्यादि के प्रबंधन और समस्याओं के निराकरण के लिए सम्बंधित गाँव या शहर की सरकार स्वायत्त और सक्षम है। इसके लिए उसे पर्याप्त वित्तीय संसाधन और प्रशासनिक अधिकार संविधान द्वारा प्राप्त है। इसके लिए वह राज्य सरकार या संघीय सरकार पर आश्रित नहीं है। राज्य सरकार या संघीय सरकार उनके विषय क्षेत्र और कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इस तरह अमेरिका की शासन व्यवस्था में सत्ता पूरी तरह विकेन्द्रित है। अढाई सौ सालों से ऐसी ही विकेन्द्रित शासन व्यवस्था में यह देश सबसे सुशासित ही नही; सबसे प्रगतिशील भी रहा है और आज प्रायः हर क्षेत्र में – शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, विज्ञान, उद्योग इत्यादि में दुनिया का अग्रणी देश है।

हमारे संविधान निर्माताओं में कइयों को, जो स्वतंत्रता संग्राम में इसके प्रेरणादायक नेता महात्मा गाँधी के शीर्ष अनुयायी थे, अपने नेता के इस विचार से उनकी सहमति नहीं थी या इसे महत्त्वपूर्ण नहीं मानते थे। कई, जिनकी संविधान निर्माण में अग्रणी भूमिका थी, महात्मा गाँधी के इस विचार के प्रति घोर उपेक्षा का भाव रखते थे, उनके इस विचार के वे ध्रुव विरोधी थे। जिस विकृत ढंग से निवर्तमान ब्रिटिश सरकार द्वारा यह संविधान सभा गठित की गई थे, इसके अधिकांश सदस्य गाँधी जी के इस विचार को अपने निहित स्वार्थ पर घोर आघात समझते थे। संवधिान सभा के लगभग सभी सदस्य या तो भारत की औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से सुपरिचित थे और समझते थे कि स्वतंत्र भारत में भी कुछ सुधारों के साथ मूलतः यही व्यवस्था चलना नितान्त स्वाभाविक है, कोई और व्यवस्था भी हो सकती है जो इससे मूलतः भिन्न हो, इसका कोई भान उन्हें नहीं था। बहुत सदस्य अपेक्षाकृत छोटे से देश ब्रिटेन की केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था को ही आदर्श मानते थे ओर भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश के लिए भी उपयुक्त समझते थे।

संविधान निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कई सदस्य जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणी भूमिका निभायी थी और उस दरम्यान उन्होंने औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की खिलाफत भी की थी, औपनिवेशिक भारत में उसी व्यवस्था में सरकार में

रहकर इसका स्वाद पा लिया था, उनको भी इस व्यवस्था के प्रति मोह था और उनका विश्वास था कि वे इसी व्यवस्था के माध्यम से भारत का विकास कर सकते हैं और इसे गरीबी से मुक्ति दिला सकते हैं। उस संविधान सभा में शायद ही कोई सदस्य हो जिसे एक बड़े लोकतांत्रिक देश यथा संयुक्त राज्य अमेरिका, जिसने अपने औपनिवेशिक शासन की बेड़ियों से मुक्त हो कर एक नई शासन व्यवस्था अपने देश में स्थापित की और दो सौ सालों से ज्यादा सफलता पूर्वक उस व्यवस्था में चलकर विकास और सम्पन्नता की राह पर निरंतर अग्रसर है, उसकी शासन व्यवस्था का व्यावहारिक ज्ञान हो। जो भी हो, संविधान सभा ने महात्मा गाँधी की 'ग्राम स्वराज' आधारित स्वतंत्र भारत में शासन व्यवस्था स्थापित करने के अहम विचार और अनुशंसा की घोर अवहेलना करते हुए स्वतंत्र भारत को मूलतः उसी औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में जकड़ दिया।

हमारे संविधान निर्माताओं को संभवतः इस अवहेलना का कुछ अपराध बोध था। ग्राम स्वराज के अलावा और भी कई बातें थीं जिन्हें महात्मा गाँधी महत्त्वपूर्ण समझते थे, उनके लिए भी संविधान में कोई प्रावधान या उल्लेख तक नहीं था। इस अपराध बोध की तुष्टि के लिए उन्होंने आयरलैंड के संविधान की तर्ज पर 26 भागों वाले भारतीय संविधान के एक भाग में उन्होनें राज्य की नीति निर्धारण के लिए बारह नीति निर्देशक सिद्धांतों को उल्लेखित किया। इन सिद्धांतों को देश में या राज्यों में लागू करना कोई संविधानिक बाध्यता नहीं है और न ही कोई इन को लागू कराने के लिए न्यायालय की शरण में जा सकता है। इन सिद्धांतों में एक है कि राज्य 'ग्राम पंचायत' कायम करने के लिए आवश्यक कदम उठाये और उन्हें ऐसे अधिकार और शक्ति दे कि वे स्वशासन इकाई के रुप में कार्य कर सकें। ऐसा करना राज्य सरकार की मर्जी पर है। आजादी के 45 वर्षों बाद 1992 में संविधान में यह संशोधन हुआ कि राज्य सरकारों को ग्राम पंचायत गठित करना और हर पाँच साल पर ग्राम पंचायतो के लिए चुनाव कराना एक संवैधानिक बाध्यता हो गई। इस संशोधन को कार्यरुप में लागू करने के लिए संसद ने एक ऐक्ट पारित किया जिसमें त्रिस्तरीय पंचायती राज का पूरा खाका और विवरणी दी गई है। इसके तहत आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय सम्बंधी 29 विषयों में ग्राम पंचायतों द्वारा उनके लिए योजना बनानी है ओर उन्हें कार्यान्वित करना है। इस ऐक्ट में कोई निर्देश नहीं है कि इसके लिए आवश्यक निधि कहाँ से और कब आयेगी और उनके लिए मानव तथा अन्य संसाधन कहाँ से और कैसे उपलब्ध होंगें। स्वयं ग्राम पंचायत के स्थापना–खर्च के लिए निधि का जो प्रावधान है वह भी सर्वथा अपर्याप्त है। फलस्वरुप व्यावहारिक रुप में राज्य सरकार ग्राम पंचायत के निर्दिष्ट विषय क्षेत्रों में अपनी सुविधानुसार, यथा राशि की उपलब्धता, ग्राम पंचायतों को कुछ विषय क्षेत्रों की योजनाओं के लिए राशि उपलब्ध कराती है और अपने नियमों के अनुसार उनका लेखा जोखा या देखरेख करती है। कोई अनियमितता पाये जाने पर राज्य सरकार ही उसकी जाँच करती है और कार्रवाई करती है। अतः कार्यरूप में ग्राम पंचायत निर्दिष्ट विषय क्षेत्रों में राज्य सरकार की ही एक कार्यकारी एजेंसी है। स्वाभाविक है कि राज्य सरकार की 'कार्य संस्कृति' की इस पर पूरी छाप हो। भ्रष्टाचार जैसी अनैतिकता के क्षेत्र में ग्राम पंचायत में जन प्रतिनिधित्व का एक कवच भी है। **अतः अभी की स्थिति में पंचायती राज हमारी शासन व्यवस्था की लूट तंत्रात्मकता का ग्रामीण विस्तार है।** पंचायत चुनाव में प्रत्याशियों द्वारा जो खर्च किया जाता है, यह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यह पंचायती राज गाँधी जी की 'ग्राम गणतंत्र', 'ग्राम स्वराज' या 'गाँव की सरकार' की अवधारणा, स्वतंत्र भारत के लिए जिसकी वह जोरदार सिफारिश करते रहे थे, से सर्वथा भिन्न है, वैचारिक रुप और व्यावहारिक रुप दोनों में। पहली बात तो यह है कि गाँधी जी के विचार में, जिसकी घोषणा वह बार–बार और विभिन्न अवसरों पर करते थे कि हमारे स्वतंत्रता–संग्राम का लक्ष्य औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से मुक्ति है, न कि अंग्रेजों से मुक्ति। अतः स्वतंत्र भारत का अर्थ औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से मुक्त भारत। और ऐसे स्वतंत्र भारत की शासन व्यवस्था का आधार होगा ग्राम स्वराज। अतः जब हम ने अपने संविधान में स्वतंत्र भारत के लिए भी तत्त्वतः औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ही अपना ली तो उसमें ग्राम स्वराज का स्थान कहाँ रहेगा? अगर हम उसमें पंचायती राज की चिप्पी साटेंगे तो वह भी तो उन सारी विकृतियों से आक्रांत रहेगा जो मूल व्यवस्था में है। बल्कि यह चिप्पी तो उस वस्त्र को तो और कमजोर और विकृत ही करेगी।

अतः वर्त्तमान संदर्भ में पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण व्यवस्था को मजबूत करने में कोई भूमिका नहीं निभा सकती। बल्कि यह वर्त्तमान राजनीति की विकृतियों, यथा समाज को बाँटने, भ्रष्टाचार, इत्यादि को गाँवों में भी ले आई है। जब तक देश में शोषणकारी और अनैतिकतापरक औपनिवेशिक शासन व्यवस्था रहेगी, पंचायती राज कभी भी सफल नहीं हो सकता, यह अपने वर्त्तमान विकृत स्वरुप में ही रहेगा। ◆

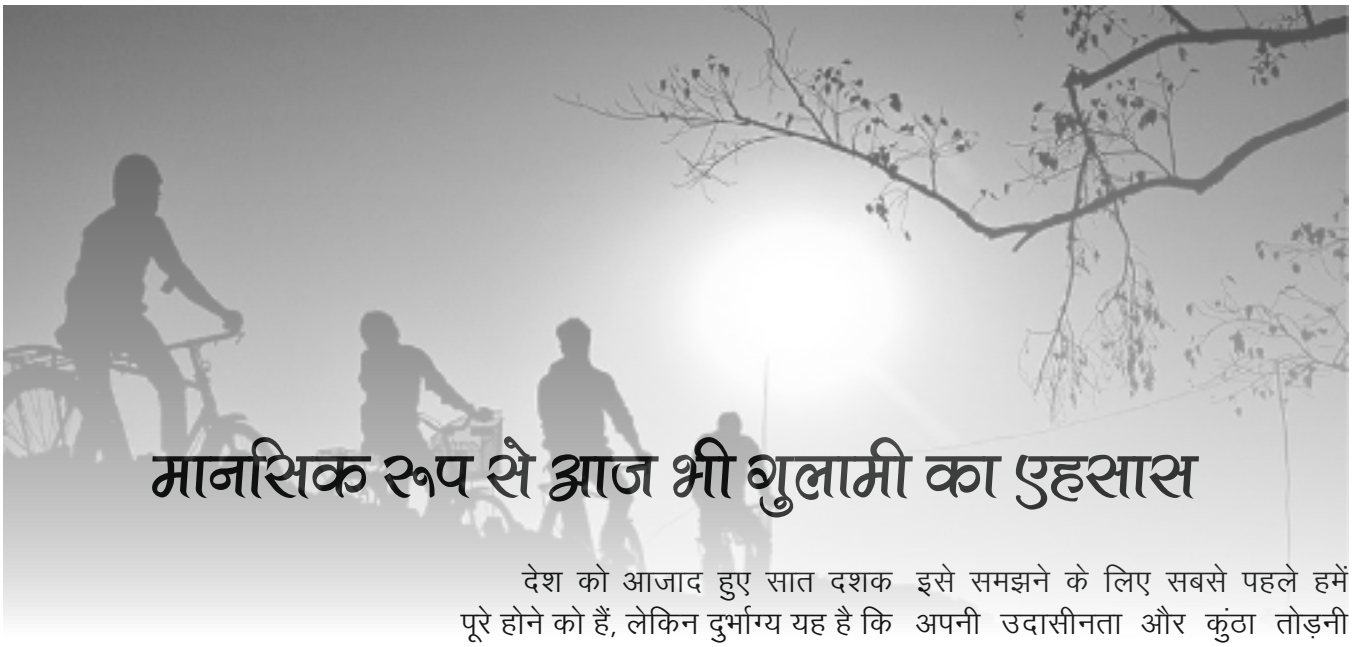

मानसिक रूप से आज भी गुलामी का एहसास

– विजयनाथ झा

कहना हरगिज गलत नहीं कि भारत की स्वतंत्रता आंदोलन का मकसद मात्र अंग्रेजों को हटाना ही नहीं था, अपितु उनकी शोषणात्मक शासन प्रणाली को भी हटाना था। लेकिन अंग्रेज बहुत तिकड़मी थे, उन्होंने स्वतंत्र भारत के संविधान की संरचना के लिए अपने ही समय में संविधान सभा का गठन कर दिया। इस में अंग्रेजों ने बड़ी चतुराई के साथ अपने निहित स्वार्थ को साधने की भूमिका निभायी। यह संविधान सभा देश के प्रायः 20% जनता का ही प्रतिनिधित्व करती थी जो ब्रिटिश शासन व्यवस्था का लाभुक वर्ग था और चाहता था कि स्वतंत्र भारत में भी ऐसी ही व्यवस्था कायम रहे।

देश को आजाद हुए सात दशक पूरे होने को हैं, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि हम आज भी पूरी तरह स्वतंत्रता का अनुभव नहीं कर पा रहे हैं। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाय तो यहाँ के लोग कमोवेश तथाकथित गुलामी की व्यवस्था में ही जी–मर रहे हैं। कहना गलत नहीं कि यहाँ सामाजिक अशांति और आपस में दिनानुदिन बढ़ते अन्तर्विरोध के चलते सामाजिक और पारिवारिक सम्बंधों में अपेक्षित समरसता का तेजी से ह्रास हो रहा है और हम तरह–तरह की विकृतियों से जकड़ते जा रहे हैं। हत्या, अपराध और लूट खसोट का ग्राफ तेजी से बढ़ता जा रहा है। इसे हम रूग्ण और शोषित मानसिकता का प्रतिफल कह सकते हैं। गंभीरता के साथ विचार करने पर यही लगता है कि यह उत्पीड़न, यह कसक, यह पनपता अन्तर्विरोध हमारी शासन व्यवस्था की मौलिक विकृतियों का ही नतीजा है। ये समस्याएँ हमारे लिए लाइलाज साबित हो रही हैं। समस्याग्रस्त लोगों के लिए इसे झेलने के सिवा और कोई रास्ता नहीं दिखता। इसलिए वैचारिक रूप से हमें यह आभास होता है कि हम आज भी अपनी गुलामी की मानसिकता से उबर नहीं पाये हैं। ऐसी बदहाली क्यों बनी हुई है इसे समझने के लिए सबसे पहले हमें अपनी उदासीनता और कुंठा तोड़नी होगी और स्वस्थ विचारों के साथ समस्या की तह तक पहुँचना होगा।

कहना हरगिज गलत नहीं कि भारत की स्वतंत्रता आंदोलन का मकसद मात्र अंग्रेजों को हटाना ही नहीं था, अपितु उनकी शोषणात्मक शासन प्रणाली को भी हटाना था। लेकिन अंग्रेज बहुत तिकड़मी थे, उन्होंने स्वतंत्र भारत के संविधान की संरचना के लिए अपने ही समय में संविधान सभा का गठन कर दिया। इस में अंग्रेजों ने बड़ी चतुराई के साथ अपने निहित स्वार्थ को साधने की भूमिका निभायी। यह संविधान सभा देश के प्रायः 20% जनता का ही प्रतिनिधित्व करती थी जो ब्रिटिश शासन व्यवस्था का लाभुक वर्ग था और चाहता था कि स्वतंत्र भारत में भी ऐसी ही व्यवस्था कायम रहे। देश की 80% जनता का, जो गाँधी जी के विचारों से प्रेरित हो स्वतंत्रता आंदोलन में किसी न किसी रुप में सक्रिय थी, कोई प्रतिनिधित्व इस संविधान सभा में नहीं था। इस संविधान सभा में पं० नेहरु, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल सरीखे लोग भी थे जो महात्मा गाँधी के शीर्ष अनुयायी और स्वतंत्रता आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाने वाले व्यक्ति थे।

वर्षों बाद देश में सन् 1959 में मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुपालन के दृष्टिकोण से पंचायती राज कार्यक्रम का श्री गणेश किया गया। लेकिन इसके मूल में जो प्रेरणा थी – वह गांधी जी की विचारधारा से भिन्न रही। यह सामुदायिक विकास योजना के लिए गाँवों के स्तर पर एक सरकारी ढ़ांचा खड़ा करने की दृष्टि रही। यही कारण है कि गाँवों की पंचायतें स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाई बनने के बदले राज्य सरकार के हाथों में पड़ी कठपुतली संस्थाएँ बन चुकी हैं। वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य पर विचार करने से लगता है कि आज की राजनीति सर्वथा सत्ता केन्द्रित हो गयी है। लगता है इसमें सिद्धान्त और नैतिक मूल्यों की कोई जगह ही नहीं है। ऐसी भ्रामक ओर स्वार्थपरक राजनीति से देश की ज्वलंत समस्याओं का निराकरण ढूंढ़ना व्यर्थ है। बहुत हद तक ये समस्याएं और विकृतियाँ वर्त्तमान राजनीति के कुत्सित स्वरूप की परिचायक हैं।

संभवतः वे भी स्वतंत्र भारत की शासन व्यवस्था सम्बंधी गाँधी जी के विचारों के प्रति पूर्ण समर्पित नहीं थे। जब संविधान का पूर्ण प्रारूप तैयार हो गया तब संभवतः संतानम् टी० प्रकाशम् ने ध्यान खींचा कि गांधी जी ने ग्राम स्वराज की कल्पना को संविधान के ढ़ांचे की बुनियाद माना था। किन्तु अपने संविधान में कहीं उसका उल्लेख नहीं मिलता। इस बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करते हुए श्री जय प्रकाश नारायण ने कहा था कि हमारा संविधान गांधी दर्शन के बिल्कुल उल्टा बन गया है। इस प्रकरण में उन्होंने संविधान सभा के अध्यक्ष राजेन्द्र बाबू से बात की। राजेन्द्र बाबू यथास्थिति से मर्माहत थे। उन्होंने तुरंत संविधान सभा के विशेषज्ञ डॉ० राव को बुलाया। डॉ० राव ने कहा कि अगर अब हम ग्राम स्वराज को बुनियाद मानकर इस संविधान को सुधारने बैठेंगे, तो इसका सारा स्वरूप ही बदल जाएगा। नेहरू और पटेल के सामने भी यह बात लायी गयी। उन्हें भी लगा कि इसे सुधारने में बहुत समय लग जाएगा। इस मुद्दे पर कुछ आवेश पूर्ण चर्चा भी हुई। लेकिन इस सब के बाद नतीजा यह निकला कि संविधान में एक धारा बढायी गयी, जिसमें राज्यों को निर्देश दिया गया कि ''संविधान के मूल मार्गदर्शक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर ग्राम पंचायत को स्वायत्त शासन की इकाई माना जाय''। इन सिद्धांतों को मूर्त रूप देने की कोई संवैधानिक बाध्यता नहीं थी। यहाँ यह गौरतलब है कि जो गाँधीजी राष्ट्रीय क्रांति के केन्द्र में बने रहे – हमारे संविधान में उनके विचारों को बस इतना ही स्थान मिल सका। संभवतः देश की दशा और दिशा को उल्टी राह जाने का यह पहला महत्वपूर्ण कदम था।

वर्षों बाद देश में सन् 1959 में मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुपालन के दृष्टिकोण से पंचायती राज कार्यक्रम का श्री गणेश किया गया। लेकिन इसके मूल में जो प्रेरणा थी – वह गांधी जी की विचारधारा से भिन्न रही। यह सामुदायिक विकास योजना के लिए गाँवों के स्तर पर एक सरकारी ढ़ांचा खड़ा करने की दृष्टि रही। यही कारण है कि गाँवों की पंचायतें स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाई बनने के बदले राज्य सरकार के हाथों में पड़ी कठपुतली संस्थाएँ बन चुकी हैं। वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य पर विचार करने से लगता है कि आज की राजनीति सर्वथा सत्ता केन्द्रित हो गयी है। लगता है इसमें सिद्धान्त और नैतिक मूल्यों की कोई जगह ही नहीं है। ऐसी भ्रामक ओर स्वार्थपरक राजनीति से देश की ज्वलंत समस्याओं का निराकरण ढूंढ़ना व्यर्थ है। बहुत हद तक ये समस्याएं और विकृतियाँ वर्त्तमान राजनीति के कुत्सित स्वरूप की परिचायक हैं। समाज में चारों ओर इतनी अशांति, असंतोष, दुर्व्यवस्था और बदहाली फैली हुई है – जिससे आम जन–जीवन बेतरह त्रस्त है। दिनानुदिन बढ रही बेरोजगारी भी ज्वलंत समस्या है देश की। बेरोजगारों की बढ़ती फौज गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रही है। दूर–दराज के शहरी इलाकों में वे आकर अमानवीय जीवन जीने को मजबूर हैं। गाँव, जहाँ भारत की आत्मा बसती थी, आज उजाड़ एवं बदहाल होता जा रहा है। वहाँ कामगार लोगों के ही लाले पड़ने लगे हैं। आबादी का ग्राफ रोज बढ़ता ही जा रहा है। इसके साथ कुव्यवस्था और बेरोजगारी भी बढ़ रही है। दूसरी ओर चारों तरफ अपराधियों का बोलबाला है। समाज में जहाँ–तहाँ हत्या, आत्महत्या, चोरी–डकैती की घटनाएँ सभी को उद्वेलित किये हुए है। देश में शिक्षा का स्वरूप भी पटरी पर नहीं दिखता है। सरकारी विद्यालयों में समुचित पढ़ाई का माहौल नहीं है और प्राइवेट सेक्टर की शिक्षा इतनी महंगी है कि आम जनता वहन करने में अक्षम है।

आज स्वतंत्र होते हुए भी हम जहाँ थे उसी शोषण के शिकार हो रहे हैं। कहना अनुचित नहीं होगा कि यह शासन व्यवस्था शासितों के पारंपरिक और व्यवस्थित लूट पर आधारित है। इस शोषण के कई कारण हैं। बेहद खर्चीली शासन व्यवस्था को जनता पर थोपना और शासन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार प्रमुख हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए भी भारी करों के साथ महंगे निजी क्षेत्रों की सेवाएं लेने की अलग मजबूरी है। देश के वैसे लोग जिनकी जिम्मेदारी इस लूट

तंत्र को नियंत्रित करने की है वे भी किसी न किसी रूप से इसका न्यूनाधिक लाभ लेने में लगे रहते हैं। और अंततः लूट का पैसा जनता की जेब से ही जाता है। इस लूटतंत्र का हर तरह से जनता ही शिकार होती है।

दूसरी तरफ विचार करने पर यह तथ्य भी सामने आता है कि देश में अरसे से अनैतिक आचरण का बोल–बाला रहा है। वस्तुतः अंग्रेजों के समय से यह फल–फूल रहा है। ज्ञातव्य है कि सात समुन्दर पार से आये अंग्रेजों को अपने शोषणात्मक लाभ के लिए भारतीयों का सहयोग और उसके लिए उन्हें विभिन्न रुपों में दलाली देने की व्यवस्था थी। अंग्रेज इस व्यवस्था को बड़ी कुशलता से निर्वहन करते थे। इसके लिए यहाँ की सभ्यता और संस्कृति की विरासत के विरुद्ध भारतीयों को लूट के इस अनैतिक कार्य में सहयोग करने के लिए उनका नैतिक अधोपतन सुनिश्चित करना अंग्रेजों का मन्शा बना रहा। कहना गलत नहीं कि अंग्रेजों द्वारा भारत पर थोपी गयी शासन व्यवस्था शोषणात्मक तो थी ही साथ ही अनैतिकता से पूरी तरह संलिप्त थी। ऐसी शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार इसका एक अभिन्न अंग है और इसे उन दिनों आपराधिक कोटि में नहीं देखा जाता था। प्रकारान्तर से यह परम्परा आज हमारी अनैतिकता की जड़ों को पोख्ता बनाने में लगी हुई है। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो इस शासन प्रणाली में नैतिकता का कोई माकूल मापदंड है ही नहीं।

आजादी के इतने वर्षों बाद भी देश की गरीबी आज भी मुँह बाये हुए है। कहना अनुचित नहीं कि सामाजिक अशांति और उत्पीड़न का मौलिक कारण समाज में व्याप्त गरीबी है। गरीबी की इस छत्र–छाया में कुपोषण, जानलेवा बीमारियाँ, अकाल मृत्यु हमारी पीड़ा को जस की तस बनाये हुए हैं। परिस्थितिवश लाचार जनता अपनी निर्धनता की पीड़ा को पचाने के लिए विवश है। इस प्रकार कहना गलत नहीं कि भारत की वर्त्तमान शासन व्यवस्था तात्विक रूप से वही है जो औपनिवेशिक भारत में थी। आम जनता यह चाहती है कि थोपी गयी यह दासता तोड़ी जाय। वह रूग्ण शासन व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्त्तन चाहती है। 1908 में लिखित 'हिन्द स्वराज' में महात्मा गांधी ने चेतावनी देते हुए कहा था कि यदि अंग्रेज भारत से चले गये और यहाँ की शासन पद्धति वही रह गयी तो देश की दुर्दशा अवश्यंभावी है। देश के तमाम क्षेत्रों में फैली विसंगति को देखते हुए गांधीजी का कथोपकथन आज भी पूरी तरह प्रासंगिक लगता है। देश की वास्तविक खुशहाली के लिए इस पर पुनः विचार करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

(लेखक एक पत्रकार एवं साहित्यकार हैं तथा पूर्ववर्ती प्रतिष्ठित दैनिक आर्यावर्त्त के संपादक मंडल में थे)

◆

आमतौर पर व्यवस्था परिवर्तन को एक जटिल प्रक्रिया मान लिया जाता है, लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। यदि भारत के नागरिक इस अभियान को समझ कर अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का समुचित प्रयोग करेंगे तो भारत में व्यवस्था परिवर्तन, पूर्ण स्वतंत्रता एवं वास्तविक लोकतंत्र का सपना कुछेक वर्षों में ही साकार हो सकता है।

तो आइये, राष्ट्रीय कायाकल्प का ग्राहक बनकर, अपने सगे–संबंधियों, परिचितों को ग्राहक बनाकर इस राष्ट्रव्यापी पहल में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करें।

राष्ट्रीय कायाकल्प

173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001, फोनः 0612 2541276

बाल गंगाधर तिलक

(1856–1920)

बाल गंगाधर तिलक, जो आम तौर से लोकमान्य तिलक के नाम से जाने जाते हैं, का जन्म महाराष्ट्र के रत्नगिरि स्थान में 23 जुलाई 1856 ई० को हुआ था। इनके पिता संस्कृत के प्रकांड विद्वान और एक विख्यात शिक्षक थे। इसी संस्कार में पले बढ़े तिलक अनन्य शिक्षा प्रेमी और भारतीय संस्कृति और आदर्शों के बहुत प्रशंसक और उनके प्रति समर्पित थे। जिस काल में देश में शिक्षा का प्रसार बहुत सीमित था, उन्होंने पूना के एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की, विधि में भी डिग्री प्राप्त की और गणित के शिक्षक बने।

उनके विचार में अंग्रेजों द्वारा भारत पर थोपी गई शिक्षा और शासन व्यवस्था में भारतीय संस्कृति और आदर्श खतरे में पड़ गए हैं। हमें इसके प्रति सावधान रहना चाहिए और हर संभव विधि से इसका प्रतीकार करना चाहिए। इसी आधार पर वह अपने देशवासियों को अनुप्राणित करना चाहते थे, उन्हें जगाना चाहते थे। इस को ध्यान में रख उन्होंने दो साप्ताहिक पत्रिका – मराठी में 'केसरी' और अंग्रेजी में 'महारट्टा' – का सम्पादन और प्रकाशन प्रारंभ किया और अपनी ओजपूर्ण भाषा में देश की जनता को जागृत करने का काम किया। उन्हें ''भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन'' का जनक कहा जाता है। अंग्रेज उन्हें भारत में राष्ट्रीय अशांति के जनक मानते थे। देशद्रोह के अपराध में उन्हें कई बार विभिन्न समयावधियों के लिए जेल जाना पड़ा। अन्तिम बार वे छः वर्षों तक तत्कालीन बर्मा, वर्त्तमान में म्याँमार, के मंडाले में जेल में रहे जहाँ से वह जून 1914 में मुक्त हुए।

अंग्रेजों से भारत को मुक्त करने के अभियान का बिगुल फूँकने वालों में तिलक की अग्रणी भूमिका थी। भारत में स्वराज स्थापित करने का मुखर विचार सम्भवतः तिलक ने पहले पहल दिया था। उन्होंने घोषणा की, ''स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर ही रहेंगे''। उन्होंने 1890 ई० में ही नवगठित ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'' की सदस्यता ग्रहण की और इसके 'गरम दल' के सदस्य के रुप में उभरे, जो भारत की सम्पूर्ण स्वतंत्रता का हिमायती था। इसी उद्देश्य से उन्होंने कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर ''होम रुल लीग'' की स्थापना 1916 में की और गाँव–गाँव घूम कर लोगों से इस अभियान में शामिल होने के लिए उन्होंने जोरदार अपील की। वे विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और 'स्वदेशी आंदोलन' के प्रबल और सक्रिय समर्थक थे। इस तरह भारत के स्वराज की लड़ाई लड़ते–लड़ते तिलक 1 अगस्त 1920 को संसार से विदा हुए।

(भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गाँधी के अवतरण के पूर्व बाल गंगाधर तिलक इस संग्राम के सबसे प्रखर योद्धा थे। यक्ष प्रश्न है कि स्वतंत्रता संग्राम के इन महान योद्धाओं ने जिस स्वराज के लिए अपनी आहूतियां दीं, क्या वह स्वराज राजनीतिक आजादी के सत्तर सालों के बाद भी भारत की सरजमीं पर आया है और जनता तक पहुँचा है?

– सम्पादक)

Reg. No. : BIHHIN/2013/62162 Postal Reg. No. : R-10/NP-69/15-16

भारत माँ अभी भी जंजीरों में

''सदियों से गुलामी की जंजीर में जकड़ी भारत माँ 1947 में इन जंजीरों से मुक्त नहीं हुई। ब्रिटिश संसद से पारित भारतीय स्वतंत्रता का कानून 1947 के तहत सत्ता हस्तांतरण कर अंग्रेजों ने सिर्फ इस जंजीर में लगे हुए ताले की चाभी भारतीयों के हाथों में सौंप दी। इस चाभी से ताला खोलकर भारत माँ को इन जंजीरों से मुक्त करने के बजाय 1950 के 26 जनवरी को इस ताले को बदल कर नया ताला लगा कर मुक्ति का सिर्फ अहसास कर लिया गया। वह जंजीर बदस्तूर कायम रही। बल्कि समय के साथ इन जंजीरों में जंग लगने से जकड़ के साथ और विकृतियाँ उत्पन्न हो रही है। हमें भारत माँ को वास्तव में इन जंजीरों से मुक्त कराना है, जिससे भारत माँ के शरीर में रक्त का संचार ठीक से हो सके, विभिन्न रोगों से छुटकारा मिले और अंग प्रत्यंग पुष्ट हो। भारत में आधी-अधूरी और फलतः विकृत स्वतंत्रता के स्थान पर पूर्ण और स्वस्थ स्वतंत्रता एवं लोकतंत्रता का आविर्भाव करना है। जन-गण की संप्रभुता को संविधान के पन्नों से निःसृत होकर जन जीवन में लाना है। और इस सब के लिए शासन व्यवस्था में तदनुरूप परिवर्त्तन लाना अनिवार्य है।''